1. श्री ऋषभदेव भगवान

जैन ग्रन्थों में ज्ञान का भण्डार है और इस ज्ञान को चार भागों में बांटा गया है द्रव्यानुयोग, कथानुयोग, गणितानुयोग और चरणकरणानुयोग। चारों का सारांश यह निकलता है कि सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान व सम्यक चारित्र। यहां पर ऋषभदेव भगवान के जन्म कल्याणक के उपलक्ष्य पर भगवान की जीवन के बारे में जानकारी समझ ली जाए।

ऋषभदेव भगवान इस अवसर्पिणीकाल में प्रथम राजा, थे। इनके पांच नाम थे।

1. प्रथम ऋषभ के माता ने पहला स्वप्न में वृषभ देखा इससे इनका नाम ऋषभ रखा।
2. प्रथम राजा (आगे वर्णन किया जाएगा।)
3. प्रथम भिक्षाचर (वह भी पहली ही गोचरी के लिये भिक्षा के लिए घूमते रहें।)
4. प्रथम जिन (अपने चार घाती कर्मों को समाप्त किये।)
5. प्रथम तीर्थंकर (वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर है) और अरिहंत कहलाते है।
6. अर्हत्–जब साधक अनन्त गुणों को घात करने वाले चार कर्मों–ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय व अन्तराय अर्थात् कर्मों का नाश कर लेता है जब चारों घाती कर्मों को नष्ट कर लेता है वह अर्हत् पद प्राप्त कर लेता है। भगवान ऋषभ भी ऐसे ही अर्हत् है।

इस अवसर्पिणीकाल के प्रथम तीन आरे (काल) को युगलिक काल भी कहा जाता है। इस समय से वांछित वस्तु कल्पवृक्ष से प्राप्त हो जाती थी। सभी तरह से सुखमय समय था लेकिन मोक्ष प्राप्ति के लिए ऐसा कोई धर्म नहीं था। ऐसे समय में जैन धर्म के प्रथम संस्थापक ऋषभदेव हुए। इस बात की पुष्टि जर्मन के प्रसिद्ध लेखक डॉ. जाकोबी ने कहा है कि जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर प्रथम ऋषभदेव संस्थापक है।

ऋषभदेव को चौदहवें कुलकर की संतान कहते है जब चौदह कुलकर की बात

आती है तो पूर्व के तेरह कुलकर कौन–कौन थे उनके नाम से तो परिचित होना भी आवश्यक है जिससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि भगवान के पूर्व भी जैन की चौबीसी थी।

चौदह कुलकर इस प्रकार है :

(1) श्री सुमति (सन्मति) (2) श्री प्रतिश्रुति (प्रतिश्रुत) (3) श्री सीमंकर
(4) श्री सीमंधर (5) श्री क्षेयंकर (6) श्री क्षेमधर
7) श्री विमलवाहन (8) श्री चतुष्मान (चक्षुष्मान) (9) श्री यशस्वी (यशस्वान)
(10) श्री अभिचंद्र (11) श्री चंद्राभ (चन्द्र) (12) श्री प्रसेन्जित (प्रश्रेजी)
(13) श्री मरूदेव (14) श्री नाभिराय

इनमें से नम्बर 7 से 14 तक के नाम कल्पसूत्र में उल्लेखित है और सभी चौदह कुलकरों के नाम जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (आगम) में उल्लेखित है। इन सभी कुलकरों ने अपने अपने समयकाल में समयानुकूल यज्ञ कराया जेसे सूर्य, चंद्र व जयोतिषी ज्ञान, पशुपालन करने का, सम्पत्ति का अधिकार, संतान से स्नेह करना, शिशु पालन का आदि।

ऋषभदेव भगवान का जीव पूर्व में 12 भवों में घूमता रहा और अपने कर्मों के अनुसार भवों का निर्धारण होता रहा जो इस प्रकार है :

1) प्रथम भव – धन सेठ का जीवन
2) द्वितीय भव–युगलिक रूप में जन्म
3) तृतीय, चतुर्थ व पंचम् भव – देवलोक में देव
4) छठा भव – वज्रसंघ
5) सांतवाँ भव – सौधर्म देवलोक में देव
6) आठवाँ भव – देवलोक में देव
7) नौवाँ भव – जीवानंद नाम का वैद्य
8) दसवाँ भव – बारहवें देवलोक में देव
9) ग्यारहवाँ भव – वज्रनाभ नाम का राजकुमार

10) बारहवाँ भव – तैंतीस समारोपन आयुष वाले देवलोक में देव

उक्त भवों के अन्तिम भव में साधना व तप के कारण तीर्थंकर गौत्र नाम कर्म बांधा और महाविदेह क्षेत्र में और भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर बनकर धर्म देशनादेते हुए धर्म का झण्डा फहराया।

भगवान ऋषभदेव का च्यवन आषाढ वदि 4 नाभिकुलकर की धर्मपत्नी मरूदेवी की कुक्षी में हुआ और चैत्रवदि 8 को जन्म हुआ। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया कि उस समय युगलिक काल था, सामान्यतयाः भाई बहिन ही बडे होकर पति पत्नि का व्यवहार करते थे। अपनी मृत्यु के छः माह पूर्व वे युगलिक को जन्म देते थे। उसी प्रकार जन्मे एक युगलिक के उपर ताड़ वृक्ष का एक बड़ा फल गिरा, उससे पुरूष युगलिक की मृत्यु हो गई। इस अवसर्पिणीकाल की यह प्रथम घटना थी एवं प्रथम असामयिक मृत्यु भी थी। कन्या के माता पिता की भी मृत्यु हो गई। अकेली कन्या को लोगों ने नाभिकुलकर को सुपुर्द किया, उसका नाम सुनन्दा रखा गया।

इस प्रकार ऋषभ के समयानुकुल दो पत्नियां बनी (1) सुमंगला (युगलिक) (2) सुनंदा समय व्यतीत होता रहा और समयानुकुल सुमंगला ने भरत और ब्राह्मी को और सुनंदा ने बाहुबली व सुंदरी युगलिक को जन्म दिया। आगे सुमंगला ने उन्पचास (49) युगलिक को जन्म दिया लेकिन वे सभी पुरूष थे। इस प्रकार ऋषभ के 100 पुत्र व 2 पुत्रियां थी।

समय काल के अनुसार पुण्य में कमी आती रही, अपराध वृति में बढ़ावा होता रहा। ईर्ष्या व संघर्ष बढ़ने लगे। लोगों ने भगवान से सुझाव मांगे कि क्या करना चाहिये। उन्होंने अपने सुझाव दिये कि दण्ड व्यवस्था होनी चाहिये जो राजा ही कर सकता है। लेकिन वहाँ राजा नहीं था। लोगों ने नाभिकुलकर से ऋषभ को राजा बनाने की मांग की। ऋषभ को प्रथम राजा बनाया। मनुष्यों की आकांक्षाए बढ़ती गई। आवश्यकता अविष्कार की जननी है। ऐसे समय में राजा ऋषभ ने सबकी इच्छा पूर्ति करने के लिए कुम्हार का कार्य विधि, आग लगाने की विधि, भोजन बनाने की विधि, व उसके बाद चार कला लुहार, चित्रकला, बुनकर, नाई व अन्य

बीस बीस भेद कर एक सौ शिल्प विद्याएं सिखलाई। इसी प्रकार पुरूषों को 72 कलाएं व स्त्रियों को 64 कलाएं सिखलाई। ब्राह्मी को दाहिने हाथ से ब्राह्मी लिपी की 18 विद्याएं सिखी तब से ब्राह्मी लिपी प्रसिद्धि हुई । इसी प्रकार बाएं हाथ से सुंदरी को गणित विद्या सिखलाई। इस प्रकार से ऋषभ ने लोगों को असि, मसि, कृषि सिखाकर समाज में समाजीकरण की अवधारण देकर मानव को सभ्यता की दुनियां में ले जाने के लिए प्रोत्साहित किया।

समय व्यतीत हो गया ऋषभ को अवर्धिज्ञान से ज्ञात हुआ कि उसका गृहस्थ जीवन समाप्ति की ओर है तो अपना अयोध्या का राज्य ज्येष्ठ पुत्र भरत को सुपुर्द किया। और बाहुबली को बहली तक्षशीला का राज्य दिया ओर अन्य पुत्रों को भिन्न भिन्न राज्य वितरित कर चैत्र वदि 8 को दीक्षा गृहण की। दीक्षा ग्रहण करते समय केश (बाल) लोच की विधि होती है। सामान्यतयाः पंचमुष्टि का विधान है लेकिन भगवान ने चार मुष्टि लोच किया और एक लम्बीचोटी रह गई जिसको देखकर इन्द्र ने कहा कि प्रभु बहुत अच्छे लग रहे हो, रहने दो। अतः चार मुष्टि लोच ही हो पाए और केश (बाल) रह गये। आज भी कई प्रतिमाओं को केश के कारण से ही पहचान की जा सकती है। दीक्षा के दिन भगवान के चोविहार छठ्ठ (दो दिन का निराहार) पर थे लेकिन भगवान को सुपात्र, सुगम, अचित, गोचरी उपलब्ध न होने से 365 दिन तक निराहार रहे और किसी भी व्यक्ति को उचित गोचरी का ज्ञान नहीं था भगवान जगह जगह जाते लेकिन लौट आते।

भगवान के चार हजार शिष्य थे गोचरी के अभाव में वे वन में चले गए। कंद मूल व फल खाकर तापस बन बए। ऋषभदेव भगवान के दो पुत्र नभि व विनमि भगवान की दीक्षा के समय बाहर गए हुए थे वे पुनः लौटे तो भरत उनको उनके राज्य का भाग देने लगा लेकिन उन्होंने राज्य नहीं लिया और भगवान के पास गये, भगवान कार्योत्सर्ग के लिये जाते उस भूमि की सफाई करते थे और भगवान की रक्षा के लिए दोनों और तलवार लेकर खड़े रहते। एक दिन धरणेन्द्र भगवान को वंदन करने आए नभि व विनमि की भक्ति को देखकर व प्रसन्न होकर उन्हें अढ़तालीस हजार विद्याएं व वैताढ्य पर्वत पर जाकर उत्तर दिशा में साठ व दक्षिण

की ओर 50 नगर बसाकर रहने को कहा। वहां से ही विद्याधर वंश प्रारंभ हुआ। दूसरी और भगवान को एक वर्ष तक सुगम व उचित गोचरी नहीं मिल सकी और मौन होने से उनकी इच्छा को लोग जान न सके।

बाहुबली के पुत्र सोमदेव के पुत्र श्रेयांस कुमार (ऋषभ के पौत्र) को अवधिज्ञान से ज्ञात हुआ कि भगवान ऋषभदेव की गोचरी नही हो रही है व देखा कि भगवान ऋषभदेव इधर ही आ रहे हैं उसी समय एक व्यक्ति इक्षुरस के (गन्ने का रस) गढ़े को उपहार स्वरूप लाया। श्रेयांसकुमार ने विचार किया कि यही गोचरी भगवान के लिए उचित व निर्दोष है अतः भगवान से निवेदन किया। भगवान ने हाथ लम्बे किये और अक्षय तृतीया के दिन इक्षुरस को वोहराया उसके बाद श्रेयांस ने लोगों को सुपात्र, उचित व निर्दोष दान को वोहराने की विधि का ज्ञान कराया । इसी दिन से अक्षय तृतीया के दिन वर्षीतप का पारणे होते हैं। भगवान ने एक हजार वर्ष तक साधना व तप करते फाल्गुन वदि 11 (एकादशी) को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके बाद धर्म देशना देते रहे और माहवदि 13 को मोक्ष सिधारे।

भगवान श्री ऋषभदेव जी

जय नाभिनन्दा, स्वामी जय नाभिनन्दा।
अज्ञान तिमिर हरने को, प्रकटे दिनन्दा।।ओम।।,
नगर अयोध्या प्रकटे, मरूदेवी माता। स्वामी।
तीन ज्ञान संग लाए, सुर नर गुण गाता।।ओम।।
ऋषभ चिह्न चरणों में, कंचन तन पाया।।स्वामी।।
नाम ऋषभ शुभ सुन के, सब जन हर्षाया।।ओम।।
नृपति मुनि जिन आदि, केवली अवतारी।स्वामी।
चार तीर्थ प्रतिपादक, भविजन हितकारी।।ओम।।
ओम उसभ नित जपता, कोट विघ्न हरे। स्वामी।
हो सुख सम्पति उदसके, जय सत्कार करे।।ओम।।
'चौथमल' कहे ऋषभ देव का, शुद्ध मन गुण गावे स्वामी।
होकर सत्य स्वरूपी, अक्षय सुख पावे।।ओम।।

2. श्री अजितनाथ भगवान

भगवान अजितनाथ का जीव पूर्व भव में महाविदेह क्षेत्र में विमल वाहन नाम का राजा था। एक मुनि के उपदेश के प्रभाव से भोग विलास से विरक्त हो गए और तप–ध्यान, आराधना, संघ सेवा, गुरूसेवा के कार्य में व्यस्त रहते। इसी भव में तीर्थंकर गौत्र का बंधन किया और अपनी आयु पूर्ण कर विनिता (अयोध्या) नगरी के इश्वाकुवंशीय जित शत्रु राजा की रानी विजयादेवी के गर्भ में वैशाख शुक्ला त्रियोदशी को आए और समय पूर्ण होने पर माघ शुक्ला अष्टमी को रात्रि में बालक का जन्म हुआ। बालक के गर्भ में आने के बाद में पासे के खेल में रानी को कभी हरा नहीं सकें, इसलिए नाम अजितनाथ रखा।

जित राजा ने अपनी ढलती उम्र को देख राज्य अजित को सौंपने की इच्छा प्रगट की लेकिन अजित की बचपन से विरक्ति की भावना होने के कारण इन्कार कर दिया और दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त कर 8 करोड़ 80 लाख मुद्राएँ वर्षीदान में देकर माघ शुक्ला नवमी को दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद 12 वर्ष तक एकांत जंगलों में ध्यान तप करने लगे आपकी साधना का प्रभाव पशुओं पर भी पड़ा। शेर व गाय भी एक साथ चरण स्पर्श करते। समस्त कर्म क्षय कर पोष मास की एकादशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई, दानशील, तप व भाव चारों प्रकार के धर्म बोलने से ही चतुर्मुख हो गए और अजितनाथ उच्च ध्यान साधना करते हुए चैत्र शुक्ला पंचमी को सम्मेत शिखर के पहाड़ पर मोक्ष सिधारे।

बुद्ध के थेरगाथा में डॉ. राधाकृष्णन ने बड़े आदर के साथ यजुर्वेद के ऋषभ, अजित व अरिष्ट नेमि के नाम का उल्लेख किया है। छठी शताब्दी के पाषाण की मूर्ति की खोज हुई जो वाराणसी से प्राप्त हुई वह लखनउ संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके साथ–साथ 11 वीं शताब्दी में खजुराहों व देवगढ़ से एक मध्य प्राचीन समय का शिलालेख मिला है जो शिवपुरी के संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. विमलवाहन राजा 2. अनुतर विमान 3. श्री अजितनाथ प्रभुजी

भगवान श्री अजितनाथ जी

जय जय अजित प्रभो, स्वामी जय जय अजित प्रभो।
जो तन्मय हो ध्यावे, पावे विजय विभो।।ओम।।
नगर अयोध्या सोहे, जितशत्रु राया।स्वामी।
स्वप्न चतुर्दश माता, विजया को आया।।जय।।
बैठ गवाक्ष में चौपड़, खेले नृप रानी ।स्वामी।
गर्भ प्रभावे बाजी, जीती महारानी।।जय।।
चेत विदि सातम को, जन्मे जिनराया ।स्वामी।
सहस्त्र अष्ट शुभ लक्षण, कनक वरण काया।।जय।।
राज छोड़ तप करके, पातक विनशाया।स्वामी।
धर्म दीपाकर स्वामी, अक्षय सुख पाया।।जय।।
सब देवों में उत्तम, तुम अंतर्रामी।स्वामी।
''चौथमुनि'' करता है, वंदउन शिर नामी।।जय।।

3. श्री संभवनाथ भगवान

श्री अजितनाथ भगवान के निर्वाण के लम्बे समय बाद महाविदेह के ऐरावत क्षेत्र में क्षेमपुरी का विपुल वाहन नाम का राजा था, वह दयावान था। प्रजा के दुख को अपना दुख समझकर उसको तत्काल दूर करने का प्रयास करता। उस समय में भयंकर दुष्काल पड़ा। राजा ने अपना सम्पूर्ण खजाना लोकहित में खोल दिया। राजा अपराधी को दण्ड व दीन–दुखियों को धन देता। सभी जीवों की किसी प्रकार की हिंसा नहीं करतां हमेशा वह प्रजा को सुखी देखना चाहता था। इन्हीं मानवीय गुणों के कारण व बीस स्थानक आदि की आराधना के कारण राजा ने तीर्थंकर गौत्र का बंधन किया। अपनी वृद्धावस्था को ध्यान में रखकर अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर स्वयंप्रभ सूरी के पास दीक्षा ग्रहण की। अंत में मृत्यु को प्राप्त हुए।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के श्रावस्ती नगर में जितारि नाम का राजा राज्य करता था, उनकी रानी का नाम सेना था। विपुलवाहिन राजा का जीव मृत्युपरांत च्युत होकर रानी के गर्भ में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को आया। समयकाल समाप्ति पर माघ शुक्ला चतुर्दशी को जन्म हुआ। जब से बालक गर्भ में आया तब से राज्य में सभी असम्भव कार्य सम्भव होने लगे। दुष्काल समय में अच्छी वर्षा होने लगी। इसलिए राजा ने उसका नाम संभव रखा। राजकुमार बड़े हुए तबपिता ने उनकी सहमति से सांसरिक भोग के लिए विवाह कर राज्य का भार सुपुर्द किया । राजा ने स्वंय ने एक दिन स्वतः घोषणा करवाई कि जिसको जितना धन चाहिए वह आकर मुझसे ले जाए। एक वर्ष तक 388 करोड़ व 80 लाख मुद्राएं दान में दी और श्रावस्ती के जंगल में मिगसिर शुक्ला पूर्णिमा को दीक्षित हुए। चौदह वर्ष तक विहार करते हुए लोकहित मैत्री, समता का पाठ पढ़ाते हुए व आराधना करते हुए कार्तिक कृष्ण 15 को केवल ज्ञान की प्राप्ति की। केवली के रूप में लम्बे समय तक देशना देते रहे और अपने अंतिम समय निकट जानकर सम्मेतशिखर जी के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पर चैत्र शुक्ला 5 को निर्वाण प्राप्त किया।

श्री सम्भवनाथ की प्रतिमा की प्राचीनता

श्री सम्भवनाथ की एक खण्डित मूर्ति मथुरा कंकाली टीले से प्राप्त हुई जिस पर सम्भवस्य उत्कीर्ण हैं। यह मूर्ति कुसन संवत् 48 (9 वीं शताब्दी ईसा पूर्व) की है जो लखनऊ संग्रहालय में संग्रहित है। इसी प्रकार की कई मूर्तियाँ उड़ीसा की नवयुति चारभुज, देवगढ़, बिजनौर, खजुराहों और त्रिसूल गुफाओं से खनन में प्राप्त हुई है। इसी प्रकार यह मूर्ति 3000 वर्ष प्राचीन है तथा एक अन्य मूर्ति मध्यप्रदेश से भी प्राप्त हुई है जो लखनऊ संग्रहालय में संग्रहित है।

इसी प्रकार उत्तरप्रदेश के किकिंधा मान स्तंभ की त्मसपब निर्मित है। "भीमसेन की लाट" नामक गाँव (कहाऊ) के पास 23 जैन तीर्थंकर की मूर्ति मिली है जिन पर बाह्मी लिपी का 12 पंक्तियों का लेख उत्कीण है जो गुरेत संवत् 141 का है।

3 भव

1. विमल वाहन राजा   2. सर्वार्थ सिद्ध में देव

3. श्री संभवनाथ दादा

भगवान श्री संभवनाथजी

ओम जस संभवजिनवर, स्वामी जय संभव जिनवर। नित
आनन्द वरतावे, प्रातः ही काल सुमिर।।ओम।।
तात जितारथ माताप, सेना है सुखकर। स्वामी। अश्व
सुलक्षण सोहे, हेम वरण सुंदर ।।ओम।।
जगतोद्वारक प्रभुजी, राज ऋद्धि तजकर ।स्वामी। हे सर्वज्ञ
प्रकाशी, वाणी जग हितकर।।ओम।।
प्रभु के चरण पड़त ही, खुशियां हो घर घर। स्वामी।
समवशरण विराजो, सेवे सुर ईन्दर ।। ओम।।
रोग शोक भग भावे, सौवे कोसा अकसर ।स्वामी। अन्ध
सूझता होवे, सुखिया हो सब नर।।ओम।।
हो सुकाल संभव से, धन धान्य पुष्कर । स्वामी। "चौथमल"
सुख पावे, दीजे ऐसा वर ।।ओम।।

4. श्री अभिनंदन भगवान

श्री सम्भवनाथ भगवान के निर्वाण के लम्बे अन्तर्राल के बाद श्री अभिनंदन भगवान तीर्थंकर हुए है।

जम्बूद्धीप के पूर्व विदेह में मंगलवती नाम का एक नगर था। वहां का महाशक्तिशाली राजा महाबली राज्य करता था । वे बहुत ही विनम्र स्वभाव के थे जिस प्रकार बहुत व्यक्ति अपने शत्रु को परास्त करता उसी प्रकार राजा अपने चार प्रकार के शत्रु को परास्त कर राज्य करते थे। ज्ञान के आधार पर ही केवल अर्हत् को ही देव, साधु को चारित्र गुरू और जिन प्रवचन को ही धर्म मानते थे। उन्हें उदारता, तप, भाव रूप चारित्र धर्म में ही आनंद की प्राप्ति होती थी। उन्होंने चारित्र धर्म को अंगीकार किया। उनकी गहरी सरलता, विनम्रता के कारण ही मुनि महाबल संघ में एक आदर्श बन गए और इन्हीं गुणों के कारण उनकी आत्मा इतनी पवित्र बन गई कि उसी भव में उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन कर लिया ।

मुनि महाबल ने शरीर त्याग कर अयोध्या नगरी के राजा संवर की पत्नी सिद्धार्था के गर्भ में वैशाख शुक्ला चतुर्थी को अवतरित हुए। समयपूर्ण होने पर माघ शुक्ला द्वितीया को जन्म हुआ। जब से बालक गर्भ में आया उसी दिन से परिवार, नगर व सारे राज्य में आनन्द होने लगा और अभिनन्द की प्रवृति बढ़ने लगी। इसलिए माता–पिता ने इनका नाम अभिनन्दन रखा। भोगकर्मा शेष होने के कारण विवाह हुआ पिता राजा संवर अपने पुत्र अभिनन्दन को राज्यभार सुपुर्द कर दीक्षित हुए।

अभिनन्दन ने एक गाँव की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी पर लम्बे समय तक राज्य किया और उनके दीक्षा की भावना उत्पन्न हुई तब उन्होंने स्वयं ने वर्षीदान देना प्रारम्भ किया और माघ शुक्ला द्वादशी को दीक्षित हुए।

भगवान ने 18 वर्ष छद्म अवस्था में व्रत पालन, उपसर्ग सहन करते हुए वृक्ष के नीचे कार्यात्सर्ग मुद्रा में स्थिति हो गए और उनके घाती कर्म के क्षय हो जाने पर पौष शुक्ला चतुर्दशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

केवली के रूप में कई वर्षों तक उपदेश देते रहे जिसमें यही बताया गया कि

संसार असार है, विपत्ति का आकार है और भगवान ने अपना अंतिम समय निकट जानकर सम्मेतशिखर जी पर्वत पर जाकर एक माह के उपवास उपरान्त वैशाख शुक्ला अष्ठमी को निर्वाण प्राप्त हुए।

अभिनन्दन भगवान की प्रतिमा : अभिनन्दन भगवान मय चिन्ह (लांछन) सहित व बिना लांछन की मूर्तियां झांसी, देवगढ़, खजुराहो व उड़ीसा की त्रिसूल गुफा से प्राप्त हुई है। वे शिवपुरी संग्रहालय में संरक्षित है।

3 भव

1. महाबल राजा
2. विजय विमान में देव
3. श्री अभिनन्दन स्वामी

भगवान श्री अभिनन्दन जी

जय जय अभिनन्दन, स्वामी जय जय अभिनन्दन
आनन्द मंगल वरते, कीजे नित वंदन ।।ओम।।
मात सिद्धारथ वनिता, संवर नृप नंदन ।स्वामी।
कनक वरण तन सोहे, कपित का शुल लक्षण।।ओम।।
जग अनित्य लख त्यागा, माया का बन्धन ।स्वामी।
लोकालोक स्वभाविक, भाषे ज्यों दरपन ।।ओम।।
जगतोत्तम जगनायक, हे जग के भूषण ।स्वामी।
तिथ्या तिमिर विनाशक, है तेरे दर्शन ।।ओम।।
दे सद्बोध जनों को, आप किया चेतन ।स्वामी।
तुमसा देव नहीं है, भव भव दुःख भंजन।।ओम।।
''चौथमल'' अब तेरे, किया सभी अर्पण ।स्वामी।
सिद्धा सिद्धि दिखाओ, हो आतम प्रसन्न ।।ओम।।

5. श्री सुमतिनाथ भगवान

श्री अभिनन्दन भगवान के निर्वाण के पश्चात् पांचवे तीर्थंकर श्री सुमतिनाथ भगवान हुए। जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह व पुष्कलावती नामक प्रदेश में शंखपुर नामक नगर था जहाँ पर विजय सेन नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत ही प्रतापी शौर्यशाली था। रानी सुदर्शन के कोई पुत्र नहीं था वह बहुत दुःखी थी। एक दिन निराहार रहकर बिना श्रृंगार के थी, राजा ने इसका कारण पूछा। केवल पुत्र का अभाव उसे दुःखदायी कर रहा था। राजा–रानी ने देवी मां की पूजा की और यह दृढ़ विश्वास होकर बैठे कि जब तक देवी मां उसकी प्रार्थना को सकारात्मक सुने, मां ने प्रकट होकर आशीर्वाद दिया और स्वप्न में सिंह जैसे विक्रमशाली पुत्र होने का संकेत दिया। संकेतानुसार गर्भ में पुत्र आया जन्म हुआ उसका नाम पौरूणसिंह रखा। राजकुमार बड़े हुए विवाह हुआ।

स्वाभाविक रूप से विवाहित जीवन के बडे क्रीड़ा–कोतुहल के साथ दिन व्यतीत कर रहे थे। संयोगवश राजकुमार विनयनंदन मुनि के सम्पर्क में आये और उपदेश सुने उन्हें दीक्षा कीभावना जागृत हुई। मुनि विनयनंदन को निवेदन किया उन्होंने माता पिता की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा पश्चात् समस्त जीवों की रक्षा करने हेतु बीस स्थानक तप की आराधना करते हुए देह त्याग दी।

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र कीविनिता नगरी (अयोध्या) के राजा मेघरथ थे। उनकी रानी सुमंगला थी। राजकुमार पौरूष सिंह अपने सत्कार्य के कारण श्रावण शुक्ला द्वितीया को सुमंगला रानी के गर्भ में अवतरित हुए। बालक के गर्भ में आते ही सारे नगर में आनंद उल्लास का वातावरण बनने लगा।

एक दिन राजा के दरबार में दों स्त्रियां अपनी फरियाद लेकर एक बालक के साथ उपस्थित हुई, कहने लगी कि उनके पति का देहान्त हो गया और अपार धन व इस बालक को छोड़ गए है। दोनों स्त्रियां बालक को अपना बताती है और न्याय की याचना करने लगी। दोनों के हाव भाव, लक्षण ऐसे स्वाभाविक थे कि बालक

किसका है इसका निर्णय नहीं कर सके और निर्णय आगामी दिन के लिए टाल दिया। राजा के चेहरे पर चिंता की रेखाएं स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वे सोच रहे थे कि न्याय करते करते किसी के साथ अन्याय नहीं हो जावे। महल में जाने पर रानी ने राजा के चेहने को देख यह भांप लिया कि कुछ न कुछ विसपरित है। कारण पूछने पर राजा दोनों स्त्रियों का झगड़े का रानी हल को लेकर दुःखी थे। इस पर स्त्री का झगड़ा स्त्री पर छोडत्र दो। वे स्वयं कल राज दरबार में उपस्थित होगी।

अगाामी दिन राज दरबार लगा। रानी भी उपस्थित हुई स्त्रियों की फरियाद रानी ने भी सुनी लेकिन एक बार वह भी चकित रह गई लेकिन तुरन्त यह निर्णय किया कि इस बालक को (उसके पुत्र होने तक) राज्य संरक्षण में रखा जावे और सारा धन भी राज्य संरक्षण में रहेगा।

नकली मां ने तुरंत हाँ कर दी लेकिन असली मां ने कहा कि बालक को दूसरी (नकली मां) को दे दो "मैं बालक को देखकर ही संतुष्ट रहूंगी।" बालक मेरे सामने रहेगा। इस बात को सुनते ही निर्णय दिया कि यह मां ही असली है। मां की ममता बोल रही– बालक को इसे सुपुर्द किया जाए और नकली मां को कारागृह में डाला जावे। नकली मां ने अपनी गलती की क्षमायाचना करते हुए कहा कि धन के लोभ में आकर बोल रही थी।

समय पूर्ण होने पर बालक का जन्म **वैशाख शुक्ला अष्टमी** को हुआ। राजकुमार के बड़े होने पर विवाह हुआ। राजा मेघरथ ने राजकुमार को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण की। राज्य का कार्य करते हुए उनके दीक्षा का भाव उत्पन्न हुआ और **वैशाख शुक्ला 9** को दीक्षा अंगीकार की। तप आराधना करते हुए कए स्थान से दूसरे स्थान विचरण कर धर्म उपदेश देते रहे।

चैत्र शुक्ला 11 को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। केवलज्ञान के प्राप्ति के पश्चात् संघ की स्थापना कर गई वर्षों तक धर्म देशना देते रहे।

अपना अंतिम समय जानकर मुनि सम्मेतशिखर जो पहाड़ पर पहुंचे और वहां पर चैत्र शुक्ला 9 को निर्वाण प्राप्त किया।

3 भव

1. पुरूषसिंह राजा 2. विजयंत देवलोक
3. श्री सुमतिनाथ प्रभुजी

श्री सुमतिनाथ भगवान की प्रतिमा

श्री सुमतिनाथ की जीवन का तिलोय नमति महापुराण, भगवत पुराण में स्पष्ट किया है कि 5 वें तीर्थकर ऋषभदेव के पथ पर है । जैन तीर्थकर Osmlogy (ब्रह्माण्ड) में पृथ्वी 1,42,30,249 योजन है x8=1,1,3841992 मील होते हैं जो वर्तमान की गणना के नजदीक ही है। प्राचीन मूर्तियां महोबा व खजुराहों से प्राप्त हुई है।

डॉ. विन्सेंट स्मिथ ने "Observation on some candel Aniguilties" में अजयगढ़ किले के तौरण दरवाजे पर कार्योत्सर्ग मुद्रा की मूर्ति होने का उल्लेख किया है।

भगवान श्री सुमतिनाथ जी

जय जिनवर ज्ञानी, स्वामी जय जिनवर ज्ञानी।
सुमतिनाथ प्रभु जग में, सुमति के दानी ।।ओम।।
मेघरथ नृप के घर में, मंगला पटरानी ।स्वामी।
स्वप्न चतुर्दश देखी, हृदय हर्षानी।।ओम।।
कौशलपुरी है सुन्दर, जन्मे जिनराया ।स्वामी।
क्रौंच पक्षी पद लक्षण, कनक वरण काया ।।ओम।।
संयम ले केवल पद पा, ज्योति विकसाई ।स्वामी।
सब प्राणी हित प्रभु ने, वाणी प्रकटाई ।।ओम।।
ब्रह्म लग्न में एक चित्त से, सुमति गुण गावे। स्वामी।
भक्त शिरोमणि होकर, नित्यानंद पावे।।ओम।।
''चौथमल'' कहे प्रभु का, पावन नाम सरे ।स्वामी।
शुद्ध बुद्ध वाणी हो, दुर्गुण दोष हरे।।ओम।।

6. श्री पद्मप्रभ भगवान

पूर्व भव :

श्री सुमतिनाथ भगवान के निर्वाण के काफी अंतराल के बाद श्री पद्मप्रभ भगवान छठे तीर्थंकर हुए।

धातकी खण्ड द्वीप में पूर्व विदेह में सुषमा नामक एक नगर था। उसका राजा अपराजित था जैसा नाम वैसा ही काम। वह शत्रुओं के लिए अपराजेय था साथ साथ में इन्द्रियों पर विजय करने से वे धर्मस्वरूप थे। न्याय उसका साथी था पर धर्म आत्मीय था। बाह्य रिश्ता बेकार है। क्रोधहीन होकर के वे शत्रु पर शासन करते इन्हीं विचारों में चिंतन करते हुए राजा को विरक्ति हो गई तब स्व पुत्र को राज्य सौंप कर पिहिताश्रवसूरि से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा पर्यन्त बीस स्थानक व अन्य कठोर आराधना कर तीर्थंकर गौत्र कर्म उपार्जन किया। वहां से जीवन पूर्ण कर ग्रेवेयक विमान में शक्तिशाली देवयोनि में उत्पन्न हुए।

जम्वद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशाम्बो नामक नगर था वहां मेघ नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी सुसीमा थी। राजा अपराजित का जीव रानी सुसीमा के गर्भ में माघकृष्णा षष्ठी को प्रविष्ठ हुआ। निर्धारित समय पूर्ण होने पर कार्तिक कृष्णा द्वादशी को रानी ने पुत्र को जन्म दिया। उनका लाल कमल लांछन था। शरीर का रंग भी लाल था इसलिए उनका नाम पद्मप्रभ रखा।

भगवान बचपन के दिन व्यतीत करते हुए प्रौढ़ अवस्था में आए। इच्छा न होते हुए भी माता–पिता की भावना का आदर करते हुए विवाह किया। काफी लम्बे समय तक राज्य कार्य किया और जब राज्य कार्य से विरक्त हो गए तब वे सहस्त्रा वन उद्यान में जाकर उन्होंने कार्तिक कृष्णा त्रियोदशी को दीक्षा ग्रहण की।

छः माह तक छद्मस्थ रूप में विचरण करते हुए पुनः भगवान उसी स्थल पर जहां पर दीक्षा ग्रहण की, लौट आए। दो दिन का उपवास करते हुए अपने घाती कर्म क्षय हो गए और चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को केवल ज्ञान प्राप्त किया।

देव–देवेन्द्र ने समवसरण की रचना की और भगवान ने उसमें प्रवेश किया। केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात 1 लाख वर्ष पूर्व का संयम का पालन करते हुए

अनेक उपसर्गो को सहन करते हुए अपने चार धाती कर्म क्षय कर आसोज कृष्णा एकादशी को निर्वाण प्राप्त किया।

पद्मप्रभ भगवान की प्राचीनता :

इलाहाबाद के पास कौशाम गाँव का नाम (कैशाम्बी नगरी) है जो भगवान की जन्म स्थली है। इसके पास प्रभाषगिरि है वहां पर मंदिर व मान स्तम्भ है। जिसके खण्डर आज भी विद्यमान है।

10 वीं शताब्दी की मूर्ति :

खजुराहो, चतर, देवगढ़, ग्वालियर में मिली है। शिवपुरी के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार राजगिरि की सोन भण्डार गुफा में 5 वीं शताब्दी की मूर्ति मिली है ।

3 भव

1. अपराजित राजा
2. आठवें ग्रेवेचक में देव
3. श्री पद्मप्रभः स्वामी जी

भगवान श्री पद्मप्रभु जी

जय जयकार करे, स्वामी जय जयकार करे।
पद्मप्रभु जिन सुमिरे, मंगलाचार करे।।ओम।।
श्रीधर नन्द निरूपम, सुषमा के जाये।स्वामी।
कौंशांबी में घर घर, सुर नर गुण गाये।।ओम।।
शुभ स्कंध सुआनन, सुंदर भुज प्यारी।स्वामी।
लक्षण चक्षु काया, पद्म वरण धारी।।ओम।।
वर्षीदान दे संयम, ले केवल ज्ञानी ।स्वामी।
भवि जनो हित प्रभु ने, प्रकट की वाणी।।ओम।।
पुरण परम दयालु, पुरूषोत्तम नामी ।स्वामी।
अधम उद्धारण जग में, तुमसा नही स्वामी।।ओम।।
''चौथमल'' कहे जो जन, शुद्ध मन से ध्यावे।स्वामी।
लीला लहर करें वहां, नित्य मंगल छावे।।ओम।।

7. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान

पूर्व अंक में श्री छठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभ भगवान का जीवन चरित्र का वर्णन हुआ। श्री पद्मप्रभ भगवान के निर्वाण के पश्चात सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का जीवन चरित्र इस प्रकार है :

पूर्व भव : धातवी की खण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में क्षेमपुरी नामक एक नगर था वहां पर नन्दीसेन नामक राजा राज्य करता था। वे हमेशा अर्हत व सिद्ध भगवान को अपने मस्तिष्क दिल में रखते थे। वे दुःखी व्यक्तियों के प्रति बड़े संवेदनशील थे। समय बीतने के साथ साथ उन्होंने संसार से विरक्त होकर आचार्य अरिदमन से दीक्षा ग्रहण की। निष्ठा व श्रद्धा के साथ कई स्थानकों की आराधना करते हुए तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया और योग्य मुहुर्त में अनशन कर देह त्याग कर छठे ग्रेवेयक में देव रूप में उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में वाराणसी (काशी) नामक नगरी थी। वहां का राजा का नाम यतिष्ठ था। वे धर्मनुरागी थे। वे दिग्विजयी थे। दिग्विजयी होने पर भी अपने शत्रु को भी सहायता करने में पीछे नहीं रहते। उनकी पत्नी का नाम पृथ्वी था। छठे ग्रेवेयक विमान से नंदीसेन का जीव अपनी आयु पूर्ण कर पृथ्वी के गर्भ में भादवा कृष्णा अष्ठमी को आये। समय पूर्ण होने पर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को पुत्र का जन्म हुआ। जब भगवान पृथ्वी के गर्भ में थे तो उनकी माता (पृथ्वी) का पार्श्व सुंदर दिखाई देता था। अतः राजा सुप्रतिष्ठ ने अपने पुत्र का नाम सुपार्श्व रखा।

माता पिता के प्रति सम्मान देने के लिए उन्होंने विवाह किया। अपने भोग कर्मों को भी क्षय करने के लिए कर्म क्षय कर्म भी करते। पिता ने अपने राज्य का भार उन पर सौंप दिया। राज्य कार्य करते हुए भी संसार से विरक्त होकर ज्येष्ठ शुक्ला तृयोदशी को दो दिन का उपवास लेकर स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की। वे छद्मस्थ रूप में विविध संकल्पों में लीन श्रमशील, धर्मशील, निर्भय, दृढ़ होकर आराधना में लीन रहते हुए विचरण करते रहे। विचरण करते हुए सहस्त्रा वन में आकर शिरीष पेड़ के नीचे दो दिन का उपवास कर स्थिर हो गए। अपने धाती कर्म का क्षय कर फाल्गुन कृष्णा अष्ठमी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

प्रथम देशना में आपने फरमाया कि देह को इन्द्रियों द्वारा जाना जाता है किंतु आत्मा को अनुभव द्वारा जाना जाता है। जब यह ज्ञान हो जाएगा कि शरीर व आत्मा भिन्न भिन्न है तो संसार का कोई भी दुःख किसी का वियोग आदि का अनुभव नहीं होगा। और भिन्नता का ज्ञान नहीं है तो सामान्य मनुष्य के लिये दुःख ही दुःख है। भगवान केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद लम्बे समय तक देशना देने हेतु गांव–गांव, नगर–नगर विचरण करते रहे। अपना अंतिम समय नजदीक देखकर सम्मेदशिखर जी पधारे और फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को मोक्ष सिधारे।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त हुई वह कुसन सं. 79 की है। एक विशिष्ठ मूर्ति जिस पर ब्राह्मी लीपी का लेख है जिस पर सुपार्श्व अंकित है जो चौथी शताब्दी की है तथा चौथी शताब्दी की ही मूर्ति मध्यप्रदेश के विदिशा से प्राप्त हुई जो लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. नंदिषेण राजा 2. मध्य ग्रेवेचक में देव 3. श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी

भगवान श्री सुपार्श्वनाथ जी

ओम जय जिन गुणधारी, प्रभु जय जिन गुणधारी।
नाथ सुपार्श्वस्वामी, जग में सुखकारी ।।ओम।।
नृप प्रतिष्ठ तात मात है, पृथ्वी पटरानी ।प्रभु।
बनारसी गंगा तट, जन्मे अवतारी।।ओम।।
स्वस्ति चिह्न चरण में, कनक बदन धारी। प्रभु।
जगतोद्धारक जग गुरू, वाणी प्रिय थारी।।ओम।।
प्रतिबोधित हो सहस्त्रो, तिर गये नर नारी।प्रभु।
सुमिरण से दुःख नाशे, महिमा है भारी।।ओम।।
मंत्र जंत्र भय भागे, अहि विष परिहारी ।प्रभु।
शुद्ध मन से जो ध्यावे, पावे रिद्धि सारी।।ओम।।
''चौथमुनि'' का वंदन, लीजे स्वीकारी।प्रभु।
तारण तिरण तुम्ही हो, तारो उपकारी।।ओम।।

8. श्री चंद्रप्रभ भगवान

पिछले अंक में श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के जीवन का वर्णन किया गया था सांतवे तीर्थकर के पश्चात आँठवे तीर्थकर श्री चंद्रप्रभ भगवान के जीवन व प्राचीनता के बारे में वर्णन किया जा रहा है :

घातकी खण्ड के पूर्व विदेह क्षेत्र में रत्नसंचय नाम का एक गांव था उसका राजा शाक्रिशाली श्री पद्म था। उनके शासनकाल में किसी प्रकार की कमी नहीं थी प्रजा भी समृद्धशाली थी। वे अफसरों की गणिकाओं से परिवृत रहे थे। सुगंधित वस्त्र, आभूषण आदि से और भी शौभायमान थे। इन सभी से विमुक्त होकर अपने कर्म को क्षय करने के लिये गुरू युगन्धर से दीक्षा ग्रहण की। बहुत से संकल्प के साथ दीर्घकाल तक व्रतों का पालन किया। इस प्रकार से उन्होनें तीर्थकर गौत्रकर्म का उपार्जन किया अपना समय पूर्ण होने पर वे वैजयंत विमान से उत्पन्न हुए। जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में चंद्रानन नाम का नगर था उसके राजा का नाम महासेन था व उसकी पत्नी लक्ष्मणा थी। राजा पद्म जो वेजयन्त विमान से तैंतीस सागरोपम की आयु को पूर्ण कर रानी लक्ष्मणा के गर्भ में चैत्र कृष्णा पंचमी को अवतरित हुए, समय व्यतीत होता गया यथा समय पोष कृष्णा द्वादशी को चंद्रलाछन युक्त पुत्र का जन्म हुआ। जन्म के समय प्रभु का शरीर चंद्रकिरण की तरह चमक रहा था बाल्यावस्था में प्रभु ज्ञान सम्पन्न थे, बाद में बडे होने लगे। प्रभु ने अपने भोगकर्म को जानते हुए पिता की आज्ञा से कई राज कन्याओं से विवाह किया। अपने जन्म के ढाई लाख वर्ष पूर्व के पश्चात् पिता की आज्ञा पाकर एक वर्ष तक वर्षीदान देकर मुग्धकारी मनोरमा नामक शिविका में बैठे और सहस्त्राभवन नामक उद्यान में पहुंचे। शिविका से उतर कर पौष कृष्णा दशमी को दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा उपरांत भगवान विपतियाँ, उपसर्ग आदि को ध्यान में न रखते हुए अविचल रूप से ध्यान (तप) में रहे। प्रवचन उपदेश देते हुए पुनः सहस्त्राभवन उद्यान में लौट आए और वहां पुन्नांग वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर अवस्थित हो गए और चारों घाती कर्म क्षय हो गए और फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान ने अपनी देशना में फरमाया कि शरीर, रक्त, मांस, चर्बी, हड्डियां आदि अपवित्र द्रव्यों से बना है तो उसमें पवित्रता कैसे आ सकती है। जिस

प्रकार खारे समुद्र में से रत्न बाहर आते है उसी प्रकार देह से निकलना उचित होता है । उपदेश देते हुए अपना निकट समय जानकर भगवान ने अपने शिष्यों सहित सम्मेत शिखरजी की ओर प्रस्थान किया और भाद्र कृष्णा सप्तमी को निर्वाण की प्राप्ति हुई।

श्री चंद्रप्रभ भगवान की प्राचीनता

एक विशिष्ट मूर्ति जो दूसरी शताब्दी की है, जिसके सात चेहरे हैं जिसका अर्थ ''सात नय'' है। इस पर ब्रह्मी भाषा का लेख उत्कीर्ण है जो लंदन के विक्टोरिया संग्रहालय में सुरक्षित है । चौथी शताब्दी की एक मूर्ति विदिशा में पाई गई जिसका वर्णन पुरातत्ववेत्ता R.C. Agarwal ने अपने लेख Newly Discovered Sculptures from Vidasa में उल्लेख है। इसी प्रकार 9 वीं शताब्दीं की एक मूर्ति खजुराहों व देवगढ़ से मिली है व अन्य मूर्तिया लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. महापद्य राजा 2. विजय विमान में देव 3. श्री चन्द्रप्रभः स्वामी जी

भगवान श्री चन्द्रप्रभु जी

जय जिनवर चंद्रा, स्वामी जय जिनवर चंद्रा।
सुख सम्पति के दाता, वरते आनन्दा।।ओम।।
जयंत विमान से आये, लक्ष्मी के नंदा।स्वामी।
महासेन घर जन्मे, चंद्रपुरी चंदा।।ओम।
शशि लक्षण युत सोहे, श्वेत वरण काया।स्वामी।
राज रमणी रिद्धि भोगी,संयम पद पाया।।ओम।।
केवल ज्ञान अनुपम, दर्शन के धारी।स्वामी।
अमित सुखोत्तम पाये, गुण के भंडारी।।ओम।।
प्रातः समय शुद्ध मन से, चन्दा चित्त चावे।स्वामी।
कमला केलि करे वहां, जग सुयश छावे।।ओम।।
''चौथमुनि'' चमके चहुं दिशि में, चंदा चित्त धारे।स्वामी।
विजय बधाई बरसे, भव जन से तार।।ओम।

9. श्री सुविधिनाथ भगवान

आठवें तीर्थंकर श्री चद्रप्रभ भगवान के निर्वाण के लम्बे अंतराल के पश्चात नवमें तीर्थकर श्री सुविधिनाथ भगवान हुए उनका जीवन परिचय इस प्रकार है :

पुष्करार्द्धद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में एक पुण्डरिकिनी नामक नगर था यहां का राजा महापद्य था। इन्होने जन्म से ही धर्म को ग्रहण किया लेकिन धर्म से ही संतुष्ट नहीं थे। वे धर्म सम्पन्न अन्य को अपने से अधिक धार्मिक समझते थे और चारित्र धर्म स्वीकार करने की इच्छा प्रबल जागृत होते हुए ही उन्होंने जगनन्द मुनि से दीक्षा ग्रहण की और उन्होने अपने जीवन में धर्म के सभी तप और भगवान की भक्ति से उन्होनें तीर्थकर नाम गौत्र उपार्जन किया। अपनी आयु पूर्ण होने पर वेजयंत विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के दक्षिण में काकंदी नाम का नगर था वहाँ पर सुग्रीव नाम का राजा राज्य करता था उनकी पत्नी का नाम रामा था। महापद्य का जीव वेजयंत विमान के 33 सागरोपम की आयु पूर्ण कर फाल्गुन कृष्णा नवमी को रामा के गर्भ में प्रवेश किया। समय पूर्ण होने पर मिगसर कृष्णा पंचमी को जन्म हुआ।

भगवान के गर्भ धारण करने के समय से ही धार्मिक क्रियाओं का सभी प्राणियों ने लाभ प्राप्त किया। माता पिता ने इनका नाम पुष्पदंत या सुविधिनाथ रखा। पूर्व भव के आधार पर वर्तमान जीवन भी पूर्ण विरक्त था लेकिन माता पिता की इच्छा को ध्यान में रखते हुए उन्होने राजकुमारियों से विवाह किया तथा पिता का राज्य संभाला और उन्होने नीतिपूर्वक राज्य का संचालन किया। अपने राज्य कार्य से विरक्त होकर सुरप्रभा नामक शिविका पर विराजकर सहस्त्र भवन उद्यान में पधारे। वहां दो दिन का उपवास कर मिगसर कृष्णा अष्टमी को दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा ग्रहण कर छदम्स्थ अवस्था में चार माह तक रहें। चार माह के पश्चात सहस्त्रभवन उद्यान में लौट आए और मूलास वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण की तथा उन्हें कार्तिक शुक्ला तृतीया को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवताओं द्वारा निर्मित समवसरण पर बैठ कर सभा को उपदेश दिया और कहा कि सुंसार दु:खों का सागर है। शुभ कर्मो से शुभ कर्म का बन्ध होता है और

कषाय द्वारा पर किये गए कर्म से अशुभ कर्म का बंध होता है। सम्यग्यज्ञान ही देवों की आराधना गुरू की सेवा, सुपात्र दान, दया, क्षमा देश विरती अकाम आदि वेदनीय कर्म के कारण है। इसके साथ साथ स्वयं के लिए दूसरो के लिए ताप पश्चाताप उत्पन्न करना व कराना असातना वेदनीय कर्मबंध का कारण होता है।

मुनि, शास्त्र संघ, धर्म और समस्त देवों की निंदा करने, मिथ्यात्व से देखना, केवली सिद्धों को देवता स्वीकार नहीं करना, विपरीत बोलना धार्मिक मनुष्य को दोषी बताना, अधर्मी का आदर करना, सत्कार पूजा न करना, बिना सोचे काम करना, गुरू की अवज्ञा करना आदि मोहनीय कर्म का कारण होता है। इसके विपरीत संयम अकाम सुगुरू से संबंध, धर्म श्रवण में रूचि सुपात्रदान, तप, श्रद्धा, ज्ञान, दर्शन व चारित्र के रूप त्रिरत्न का आराधना कर्म बंध का कारण होता है।

इस प्रकार भगवान उपदेश देते हुए विहार करते रहे, अपना अंतिम समय नजदीक जानकर सम्मेत शिखर जी तीर्थ पधारे और कार्तिक कृष्णा नवमी को निर्वाण सिधारे।

इस प्रकार भगवान के निवार्ण पश्चात हुण्डा अवसर्पिणि काल के दोष के कारण श्रमण धर्म का विच्छेद हो गया अर्थात् साधु इस अवधि में कोई भी नहीं रहा। जिससे मनुष्य धर्म क्या है ? भूल गए। वृद्ध लोग धर्मकथा के माध्यम से अपने अपने मत के अनुसार धर्म बताने लगे व उनको अर्थ आदि देकर पूजने लगे और वृद्ध लोग अर्थ लाभ के कारण नए नए शास्त्र रचने लगे और दान आदि के रूप में चाहे वह दान, अर्थदान, कन्यादान, भूमिदान, स्वर्णदान, शासनदान, हस्थीदान, अश्वदान गोदान आदि के कारण इस लोक व परलोक में फलदायी होने का उपदेश देते रहे। इस प्रकार कर्मकाण्ड की उत्पति हुई।

इस प्रकार भरत क्षेत्र के शीतलनाथ भगवान के द्वारा संघ की स्थापना के पूर्व संघ विच्छेद हो गया था। और उस समय अजैनो का एक छत्र राज्य स्थापित हो गया। यहा यह स्पष्ट करना होगा कि शांतिनाथ भगवान के पूर्व संघ का छः बार विच्छेद हुआ।

श्री सुविधिनाथ भगवान की प्राचीनता

जैसा कि वर्णन किया है कि भगवान की जन्म स्थली काकंदी थी जो वर्तमान में उत्तरप्रदेश में खुखांदु गाँव है । रामायण युग में किष्किंघा नाम का एक प्रसिद्ध नगर था। इसी समय इस नगर का जीर्णोद्वार हुआ। इनकी चौथी शताब्दी की एक मूर्ति विदिशा (म.प्र.) व दो मूर्ति 11 वी शताब्दी की उड़ीसा की गुफा से प्राप्त हुई व एक मूर्ति छत्रपुर से प्राप्त हुई। ये सभी मूर्तियें झांसी संग्रहालय में सुरक्षित है। उत्तरप्रदेश के किकिंधा मान स्तम्भ की मिली है।

''भीमसेन की लाट'' नामक गांव में 23 तीर्थंकर की मूर्ति मिली है इस पर 12 पंक्तियों का ब्राह्मी भाषा का एक लेख है जो गुप्त सं. 141 का है। दूसरी शताब्दी पूर्व ई.सा. की एक मूर्ति तमिलनाडू (कहाऊ के पास) के संग्रहालय में सुरक्षित है। 24 तीर्थंकर की पट्टी गिणी गुफा के पास मिली है।

3 भव

1. पद्यम राजा 2. आनत देवलोक में देव 3. श्री सुविधिनाथ स्वामी जी

भगवान श्री सुविधिनाथ जी

जय जिनवर प्यारा, स्वामी जय जिनवर प्यारा।
सुविधिनाथ सुखकारी, जाने जग सारा।।ओम।।
काकंदी नगर, अतिसुंदर, सुग्रीव महाराया ।स्वामी।
रामा रानी जाया, सब जन सुख पाया।।ओम।
नाम नाथ का नीका, पुष्पदंत सोहे।स्वामी।
मकर चिह्न के धारी, सुर नर मन मोहे।।ओम।।
शुभ्रानन शुभ ज्योति, लेश्या शुभ पावे।स्वामी।
उज्जवल दर्शनधारी, उच्च गति पावे।।ओम।।
शुद्ध हृदय से जो नर, सुविधिनाथ ध्यावे।स्वामी।
सुबुद्धि हो उसकी, सुन्दर फल पावे।।ओम।।
''चौथमल'' आशा कर, शरण लिया तेरा ।स्वामीं
कृपा किरण से हृदय, कमल खिले मेरा।।ओम।।

10. श्री शीतलनाथ भगवान

पुष्कर द्विपार्द्ध के पूर्व विदेह क्षेत्र में सुसीमा नामक एक नगर था उसका राजा पद्योतर था। उनका आदेश कभी भी मान्य नहीं हुआ क्योंकि वे प्रत्येक जीव के प्रति करूणा भाव रखते है । उनको पास भाव वीरत्व और शांतरस थे। क्रोध को वे अपने पास भटकते नहीं देते थे और सभी जीव के प्रति करूणाभाव रखते थे। इसी उद्देश्य से वे धर्म के प्रति भी जागरूक थे । वे राज्य का परित्याग करने के बारे में भी जागरूक थे। राज्य का परित्याग करने के बारे में चिंतन करते रहते। उन्होंने त्रिस्ताध नामक आचार्य से दीक्षा ग्रहण कर कई प्रकार की आराधना की। उसमें बीस स्थानकों की आराधना प्रमुख है । इस तपस्या की आराधना से तीर्थकर गौत्र कर्म उपार्जन किया । आयुष पूर्ण होने पर दसवें देवलोक में देव बने ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक भदेलपुर नामक सुंदर, वैभवशाली राज्य था जो आज उत्तरप्रदेश के हजारी बाग जिले का गोदल गांव कहलाता है। इस क्षेत्र के पास कोल्हाजा पहाड़ी क्षेत्र में कुछ खण्डित मूर्तियो मिली है। जो शीतलनाथ भगवान की है। इसके राजा का नाम दृढ़रथ था। वे शत्रुओं से जबरदस्ती जो धन ग्रहण करते वह धन, गरीब, असहाय व्यक्तियों को बांट देते। उनकी रानी का नाम नंदादेवी था। पद्मोचर का जीव वैशाख कृष्णा 6 को नंदा की कुक्षी में उत्पन्न हुआ। समय पूर्ण होने पर रानी ने माघ कृष्णा द्वादशी को पुत्र को जन्म दिया। बालक गर्भ में आने के पहले रानी नन्दा का शरीर तपता रहता था। गर्भ में आने के बाद तपता शरीर शीतल हो गया इसलिए नाम शीतल रखा ।

पिता की आज्ञा से शीतलनाथ ने विवाह किया और लम्बे समय तक राज्य शासन किया । जब भगवान के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ तो एक वर्ष वर्षीदान दिया और चंद्रप्रभा नामक शितिका में विराजकर सहस्त्राभवन उद्यान में जाकर अपने सारे अलंकार उतार दिये । उपस्थित देव–असुर मानव के साथ माघ कृष्णा द्वादशी को दिक्षीत हुए। भगवान तीन माह तक छद्म अवस्था में विहार करते रहे। तीन माह बाद पुनः सहस्त्राभ्रवन में लौट कर आए। सप्तवर्ण वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण की। चार धाती कर्मो को क्षय करते हुए पौष कृष्णा चतुदर्शी को केवलज्ञान की प्राप्ती की।

आपका जन्म ऐसे समय में हुआ है जब मनुष्य कुधर्म को धर्म, कुदेव को देव, कुगुरू को गुरू को ग्रहण कर लिया। ऐसे समय में भगवान शीतलनाथ ने कहा कि इस संसार में सब कुछ क्षणिक व विविध दुःखों का कारण है। अतः मोक्ष के लिए प्रयास करना चाहिए। मोक्ष संवर द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। संवरे दो प्रकार के होते हैं। द्रव्य संवर व भाव संवर । कर्म मुद्गलों के आगमन निराध द्रव्य संवर है। संसार में क्रिया का त्याग को भाव संवर कहा जाता है। अतः चारित्र धर्म को अंगीकार कर क्षमा का भाव, नम्रता, सरलता, मोह–माया राग–द्वेष ब्रह्मचर्य को स्वीकार्य होता है। संवर की आराधना से सम्यग दर्शन की प्राप्ती होती है।

इससे सभी प्रकार के कषाय दूर हो जाते हैं। इस प्रकार की देशना सुनकर कई श्रावक–श्राविकाओं ने श्रवण देश ने सर्व वीरती धर्म स्वीकार कर लिया। अंतिम समय जानकर भगवान सम्मेदशिखर गए और 1000 मुनियों के साथ उपवास ग्रहण किया और एक माह के उपवास पश्चात् वैशाख कृष्णा द्वितीया को मोक्ष सिधारें।

शीतलनाथ भगवान की प्राचीनता

इनकी जन्मस्थली भद्रीकापुरी थी जो उत्तरप्रदेश के हजारीबाग जिले का गोदल गांव कहलाता है । इसकी जन्मस्थली के पास कोल्हाजा पहाड़ी क्षेत्र (उ.प्र.) के कुछ खण्डित मूर्तियां जिस पर श्री वत्स का चिन्ह है। जिसके पश्चात् पुरातत्ववेता श्री डॉ. एम.ए. रोटेव ने सन् 1901 में यह सिद्ध किया है कि यह जैन तीर्थंकर हे ।

10 वीं शताब्दी की मूर्ति जो म.प्र. के औरंग में पाई गई है जो कलकत्ता के संग्रहालय में तथा 12वीं शताब्दी की मूर्ति गुजरात के कुम्भारिया के पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर में पाई है तथा बरभुज की गुफा (उड़ीसा) में पाई गई है ।

3 भव

1. पद्योतर राजा 2. प्राणत देवलोक में देव 3. श्री शीतलनाथ प्रभु जी

भगवान श्री शीतलनाथ जी

ओम शीतल जिन देवा, स्वामी शीतल जिन देवा।
आनन्द मंगल वरसे, करके प्रभु सेवा ।। ओम।।
भूपति दण्डसेन घर, नन्दा पटरानी । स्वामी।
भद्दिलपुर के अंदर, जन्म लिया ज्ञानी ।। ओम।।
श्रीवस्त चिह्न चरण में, कनकोत्तम काया । स्वामी।
घातिक कर्म खमाकर, केवल पद पाया ।। ओम।।
हिंसक तस्कर पापी, जो शरण आये । स्वामी।
शुद्ध समकित वे पाकर, मुक्ति पद पाये ।। ओम।।
डूबते भव प्राणी को, प्रभुवर ने उबारे । स्वामी।
दया करो जग ऊपर, बहुत जीव तारे ।। ओम।।
सुख सम्पति इच्छित फल, अनुचर को दीजो । स्वामी।
"चौथमल" चरण का सेवक, विनती सुन लीजो ।। ध्रुव।।

11. श्री श्रैयांसनाथ भगवान

दसवें तीर्थकर के निर्वाण के पश्चात ग्यारहवें तीर्थकर श्री श्रेयांसनाथ भगवान अवतरित हुए जिनका वर्णन इस प्रकार है :

पुष्करार्द्धद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में क्षेमा नाम का एक नगर है उस पर नलिनी गुल्म नाम का राजा राज्य करता था। राजा धार्मिक वृति का था। वह कंलक रहित था। वे हमेशा प्रयत्नशील रहते कि उनके राज्य में कोई कमी न रहे। इसी कारण से पूर्ण पृथ्वी पर उनका शासन था समय के साथ–साथ उनके जीवन में वैराग्य का अनुभव होने लगा और सभी सुख सुविधा को छोड़ मुनि श्री वज्रदत्त से दीक्षा ग्रहण की । सांसारिक बंधन से मुक्त होकर कठोर तपस्या करने में लीन रहने लगे। तपस्या के बल से अर्हत की आराधना से उन्होंने तीर्थकर गौत्र कर्म उपार्जन किया। जीवन व्यतीत होने पर महाशुक्र विमान में देव उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुरी नामक एक सुंदर नगरी थी, यहाँ पर विष्णु नाम का राजा राज्य करता था। यह नगरी पूर्व में उडीसा मे कंलिग राज्य की राजधानी थी। वहाँ सम्राट सम्प्रति ने तीन कल्याणक उत्सव मनाये और स्तूप बनाया। स्तूप पर सम्राट अशोक के शेर के चेहरे व चक्र बनाया । राजा प्रतापी, वीर व कीर्तिमान था वे इन्द्रिय संयमी थे जिसके कारण उनमें कई गुण स्वतः उत्पन्न हो गए। उनके साथ ''श्री'' व ''भी'' एक साथ रहती थी। उनकी रानी का नाम विष्णु देवी था। नलिनी गुल्म का जीव महाशुक्र विमान से अपना आयुष पूर्ण कर विष्णु देवी रानी के गर्भ में ज्येष्ठ शुक्ला षष्टी को अवतरित हुआ और भाद्रपद कृष्णा द्वादशी को गेंडे के लक्षण से युक्त पुत्र का जन्म हुआ। दूसरे दिन जन्मोत्सव का आयोजन किया गया। आयोजन के समय पृथ्वी पर सभी जगह आनन्द हो गया और हर कार्य श्रेयस्कर हुआ। अतः बालक का नाम श्रेयांस कुमार दिया। योवनावस्था के होने पर राजा ने राज्य का भार श्रेयांस कुमार को सौंपा और राजा श्रेयांस कुमार ने लम्बे समय तक राज्य किया। लम्बे समय तक राज्य करने पर उन्हें सभी वस्तुएं तुच्छ दिखाई देने लगी और वैराग्य की अनुभूति हुई और एक वर्ष तक वर्षीदान दिया और बाद में विमल प्रभा नामक शिविका मे बैठकर सहस्त्रावन मे गये वहां दो दिन के उपवास के साथ दीक्षित हुए और दूसरे दिन फाल्गुन कृष्णा त्रियोदशी सिद्धार्थ नगर के राजा नंद के घर पर पारणा कर गांव गांव विचरण करते हुए प्रवचन देते रहे। भगवान श्री

श्रेयासनाथ दो माह तक छद्मस्थ अवस्था में विहार कर सहस्त्रावन मे आए और वहां पर अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए उन्होंने चार घाती कर्मो (ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीयवरर्णीय व अन्तराय कर्म) का क्षय कर माघ कृष्णा अमावस्या को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

समवसरण पर विराज कर भगवान ने उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप कई लोगो को सम्यकज्ञान की प्राप्ति हुई और कई साधु बन गए। अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर सम्मेतशिखर पर्वत की ओर प्रस्थान किया और एक माह का उपवास कर श्रावण कृष्णा तृतीया को निर्वाण प्राप्त किया।

श्री श्रैयांसनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री श्रैयांसनाथ भगवान की पृथक से कोई प्रतिमा नहीं प्राप्त हुई लेकिन श्रावस्ती से एक पंचतीर्थी प्रतिमा प्राप्त हुई है जो लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

3 भव

1. नलिनी गुप्त राजा 2. अच्युत देवलोक में देव 3. श्री श्रेयांसनाथ प्रभुजी

भगवान श्री श्रेयांसनाथ जी

ओम जय जिनवर ज्ञाता, प्रभु जय जिनवर ज्ञाता ।
श्रेयांसनाथ जिन जी का, सुर नर गुण गाता।।ओम।।
विष्णु नृप सिंहपुर के, विष्णु जी माता। प्रभु।
तन पर चिह्न गैंडे का, जग में की साता ।।ओम।।
जग हितकारक प्रभु ने, तज जग की माया।प्रभु।
जगपति केवल पाकर, जग में समझाया ।।ओम।।
परम पुरूष पुरूषोतम, पूरण हो ज्ञानी।प्रभु।
परम दया कर तुमने, तारे जग प्राणी ।।ओम।।
शुद्ध मन से जो सेवे, सुख सम्पति पावे ।प्रभु।
कल्मष पाप विनाशे, उत्तम पद पावे।।ओम।
"चौथमल" की चिंता, चूरो अविनाशी। प्रभु।
लीनी शरण चरण की, सुन लो शिववासी ।।ओम।।

12. श्री वासुपूज्य भगवान

ग्यारहवें तीर्थकर के निर्वाण होने के पश्चात लम्बे वर्षो के अन्ताल पर बारहवें तीर्थकर श्री वासुपूज्य भगवान अवतरित हुए जिनका जीवन वर्णन इस प्रकार है :

पुष्करद्विपार्द्ध के पूर्व विदेह क्षेत्र मे मंगलमयी नामक नगर था उसमें पदमोत्तर नामक राजा राज्य करते थे। वे समृद्धिशाली, धर्मप्रिय थे। जिनवाणी को हृदय में धारण करते थे। वे हमेशा यह सोचते रहते थे कि लक्ष्मी चंचल होती है, बंधु वगैरह सभी लालच से परिपूर्ण होते है, यहां तक यौवन सौंदर्य सब अस्थायी होते है। इसी विचार से उनको वैराग्य आ गया । एक दिन बज्रनाम गुरू के चरणों में जाकर दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने बीस स्थानक तप अर्हत भक्ति द्वारा तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया। दीर्घ तपस्या करते हुए प्राणत नामक स्वर्ग में देव रूप में उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में चम्पा नामक एक नगर था वहां पर वसुदेव राजा राज्य करते थे उनकी रानी का नाम जया था।

प्राणत नामक स्वर्ग के पद्मोत्तर राजा के जीव ने अपनी आयु पूर्ण कर ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को रानी जया के गर्भ में अवतरित हुए। समय पर फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को महिष लक्षण के साथ पुत्र जन्म हुआ। जन्मोत्सव के बाद जया रानी ने भगवान का नाम वासुपूज्य रखा। भगवान यौवन अवस्था में आने पर विवाह का प्रस्ताव हुआ तो उन्होंने सोचा कि नश्वर शरीर को विवाह व राज्य करने का कोई प्रयोजन नहीं है। पिता को कई प्रकार से समझाया लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में भगवान ने सांसारिक भोग से अनिच्छा प्रकट की तो राजा वसुदेव व रानी जया ने समझाया तो बहुत लम्बे समय पश्चात दीक्षा ग्रहण करने को इच्छुक हुए। एक वर्ष तक दान दिया। पृथ्वी नामक शिविका पर आसीन होकर श्रेष्ठ उद्यान में गए। एक दिन के उपवास के साथ फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को दीक्षित हुए। दीक्षित होने के पश्चात् ग्राम से ग्राम विहार करते हुए प्रवचन देते हुए विचरण करते रहे।

एक माह तक छद्म अवस्था में विचरण करते हुए सहस्त्राभ्रवन उद्यान में पहुँचे। वहाँ पर ध्यान मग्न हो गए, उसी समय उनके घाती कर्म का क्षय हुआ और वैशाख कृष्णा चतुर्दशी के दिन भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। देव द्वारा निर्मित समवसरण में विराजकर देशना दी। रास्ते से अनभिज्ञ मनुष्य की तरह तत्व को नहीं जानने वाला व्यक्ति पथ भ्रमित हो जाता है। उन्होंने बताया कि जीव,

अजीव, आश्रव, संवर, निर्झरा, बंध व मोक्ष, ये सात तत्व है, इनमे भी जीव के प्रकार को समझाया गया है। प्रकृति का अर्थ है–स्वभाव और इसके आठ भेद है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गौत्र और अन्तरा। ये आठों कर्म में आते है। भगवान ने सभी जीवों को ज्ञानदान का प्रवचन दिया। अपना अन्तिम समय निकट जानकर भगवान 3000 साधुओं सहित सम्मेतशिखर पर गये और उपवास ग्रहण किया। एक माह के उपवास के पश्चात चेत्र शुक्ला पंचमी को निर्वाण प्राप्त किया।

श्री वासुपुज्य भगवान की प्राचीनता :

भगवान की जन्म स्थली चम्पानगरी रही जो किसी समय में अंग देश की राजधानी थी। यह वह स्थान है जिसको (जनपद) ऋषभदेव ने अपने राज्य को 52 भागों में बांटा था। यह वही स्थान है जहां महाभारत में दुर्योधन ने कर्ण को राज्य सुपुर्द किया था। दशवी शताब्दी की कई प्रतिमाएं मध्यप्रदेश के शहडोल के पास से मिली है, जो लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित है, 12 वीं शताब्दी की प्रतिमा कुम्भारिया के पार्श्वनाथ के मन्दिर में है।

3 भव

1. पद्योतर राजा 2. प्राणत देवलोक में देव 3. श्री वासुपूज्य स्वामी जी

भगवान श्री वासुपूज्य जी

जय वासुपूज्य देवा, स्वामी जय वासुपूज्य देवा।
भाव भक्ति से सुर नर, करे चरण सेवा ।।ओम।।
पिता वसु महाराया, चम्पापुरी भारी ।स्वामी।
मात जया गुणधारी, छवि अद्भूत प्यारी ।।ओम।।
माणक द्युति समकाया, चिह्न महिष धारी।स्वामी।
राज्य लक्ष्मी भोगी, आतम उजवारी ।।ओम।।
गोस्वामी जग पूजित, हे जग के स्वामी ।स्वामी।
प्रबोधित कई प्राणी, बन गये शिव गामी।।ओम।।
जो कोई तुम भक्ति में, तन्मय हो जावे।स्वामी।
ग्रह शान्ति हो घर में, मंगल वरतावे ।।ओम।।
"चौथमल" भावों से, शरण तेरी चावे।स्वामी।
शुद्ध समकित हो मेरी, यही भाव आवे।।ओम।।

13. श्री विमलनाथ भगवान

12 वें तीर्थकर के निर्वाण के पश्चात् लम्बे अन्तराल के बाद श्री विमलनाथ भगवान तेरहवें तीर्थकर हुए है उनके जीवन का वर्णन किया जा रहा है :

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व विदेह में एक विजय नामक नगरी थी वहाँ के राजा का नाम पद्मसेन था। वे वीर व सरल थे। वे निर्धन की तरह रहते थे। वे सांसारिक विषयों से विरक्त थे। संसार से विरक्त होकर सर्वगुप्त नामक आचार्य के पास गए। वे स्वजनो की रक्षा करने लगे। विभिन्न स्थानकों की साधना, अर्हत् मुक्ति के कारण तीर्थकर गौत्र का उपार्जन किया। अपनी आयु पूर्ण होने पर देव रूप से उत्पन्न हुए। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कम्पिलम नामक एक नगर था । इस नगर के राजा का नाम कीर्तिवर्य था। वे पीड़ित लोंगो की सहायता करने में लीन रहते थे। वे वीर, चरित्रवान, निंदा से हमेशा दूर रहते थे। उनकी रानी का नाम श्यामा था। पद्मसेन का जीव अपनी आयु पूर्ण कर वैशाख शुक्ला द्वादशी को श्यामा की कुक्षी में अवतरित हुआ। बालक जब गर्भ में था उस समय रानी बहुत ही विमल हो गई और माघ कृष्णा तृतीया को जन्म हुआ । राजा कीर्तिवर्य ने जन्मोत्सव हर्षोल्लास से मनाया और बालक का नाम विमल रखा। भगवान ने योवनावस्था को प्राप्त किया ।

संसार से विरक्त होने पर भी पिता की आज्ञा के कारण विवाह किया। पिता के आदेश होने पर भगवान ने राज्यभार ग्रहण किया। 30 लाख वर्ष राज्य करने के पश्चात् संसार कार्य से मुक्ति की इच्छा हुई एक वर्ष तक दान देते हुए देवदत्त नामक शिविका में बैठकर सहस्त्राभवन उद्यान में गये। वहां जाकर माघ शुक्ला चतुर्थी को दीक्षित हुए। दो वर्ष तक छद्मस्थ रूप से विचरण करने के बाद भगवान पुनः सहस्त्राभ्रवन उद्यान में आए। अपने चारों घाती कर्मो को क्षय कर पौष कृष्णा षष्ठी को उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई । केवल ज्ञान प्राप्त होने पर देवों ने समवसरण की रचना की, समवसरण पर बैठकर देशना दी कि कुशाभ श्रवण, मिथ्यात्वियो का संग, वासना और प्रमाद बौधिरत्न की प्राप्ति में बाधक है। बोधिरत्न ही सर्व श्रेष्ठ है, बोधिरत्न के अभाव में सम्राट भी तुच्छ दरिद्र है। भगवान का उपदेश सुनकर अधिकतर लोगो ने दीक्षा ग्रहण की। विमलनाथ भगवान ने लोक कल्याण के लिए ग्राम, नगर, बन्दरगाह आदि स्थानों पर विचरण किया। अपना अन्तिम समय

निकट जानकर सम्मेतशिखर पर्वत की ओर गये और एक माह के उपवास से आषाढ़ कृष्णा सप्तमी को निर्वाण प्राप्त किया ।

श्री विमलनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री विमलनाथ भगवान का जन्म स्थली उत्तरप्रदेश के फरूकाबाद जिले की कम्पिल थी। कम्पिल भी ऋषभदेव भगवान के जनपद में से एक था। महाभारत में श्री अर्जुन द्वारा मछली की आंख को निशाना बनाने व द्रोपदी का स्वयंवर का वर्णन भी कम्पिल का उल्लेख आया है। इनका चिन्ह (लाछंण) वराह होने के कारण इनको विष्णु भी मानते हैं। इनकी प्रतिमा कम है लेकिन 9 वीं शताब्दी की प्रतिमा जो वाराणसी से प्राप्त हुई है। वह सारनाथ के संग्रहालय में सुरक्षित है तथा 10 वीं शताब्दी की काउसग्ग मुद्रा की प्रतिमा उड़ीसा के वरभुज की त्रिशुल गुफा से प्राप्त हुई वह लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

3 भव

1. पद्मसेन राजा 2. सहस्त्रार देवलोक में देव 3. श्री विमलनाथ जी

भगवान श्री विमलनाथ जी

ओम तीर्थेश्वर स्वमी, प्रभु तीर्थेश्वर स्वामी।
विमलनाथ सर्वोत्तम, सुन अंतमर्यामी।।ओम।।
कम्पिलपुर के महीश्वर, श्यामा के जाया प्रभु।
वराह चिह्न सुशोभित, हेम वरण काया।।ओम।।
तुम ही मात तात व, मित्र सखा मेरा ।प्रभु।
नायक नाथ तुम्ही हो, पार करो बेड़ा ।।ओम।।
शिशु के है आधार मात का, प्यासे को पानी ।प्रभु।
केवल आधार इक तेरा, सुन केवल ज्ञानी ।।ओम।।
चिन्तामणि कल्पतरुवत, लीने पहचानी ।प्रभु।
अन्य देव नहीं मानूं, दोष युक्त जानी।।ओम।।
विमल विमल हो बुद्धि, सुनो विनय म्हारी ।प्रभु।
"चौथमल" को दीजो, शाश्वत सुख भारी ।।ओम।।

14. श्री अनन्तनाथ भगवान

धातकी खण्डद्वीप के पूर्व विदेह क्षैत्र में एक अरिष्ट नामक नगर था। यहाँ के राजा पद्मरथ थे। वे वीर थे, अजेय थे। धीरे धीरे सांसारिक सुंदरता व भोगविलास से विरक्ति होने लगी। उन्होंने चित्तरक्ष मुनि से दीक्षा लेकर बीस स्थानक और अर्हत की साधना कर उन्होंने तीर्थकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया। आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में देव बने। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में दक्षिणी गोलार्द्ध में अयोध्या नाम की एक नगरी थी वहाँ पर सिंहसेन नाम का राजा राज्य करते थे। वे वीर, अनन्त गुणी थे, उनकी रानी का नाम सुयषा था पद्मरथ का जीव आयुष्य पूर्ण कर श्रावण कृष्णा सप्तमी को माता सुयषा की कुक्षी में अवतरित हुआ और वैशाख कृष्णा त्रियोदशी को जन्म हुआ।

जब बालक गर्भ में था तब राजा सिंहसेन ने शत्रु की अनन्त बलशाली सेना को पराजित किया इसलिए बालक का नाम अनन्त रखा। भगवान बचपन से योवनावस्था में प्रविष्ट हुए, पिता की आज्ञा से विवाह किया लम्बे समय तक (15 लाख वर्ष) राज्य किया, उसके बाद संसार परित्याग का विचार आया। एक वर्ष तक वर्षीदान दिया और सागरदत्ता नामक शिविका पर बैठकर सहस्त्राभवन उद्यान में पहुँचे। दो दिन का उपवास सहित तथा एक हजार राजाओं के साथ वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को दीक्षित हुए।

अनन्तनाथ भगवान तीन वर्ष तक छद्मस्थ रूप में विचरण करते हुए सहस्त्राभवन उद्यान में लौटे और अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हुए। उनके चार घाती कर्म क्षय हुए और वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। देवों द्वारा रचित समवसरण पर विराजकर देशना दी कि कर्म बंध के पांच कारण है–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग। इन पांचो के अभाव से चार घाती कर्म क्षय हो जाते है और केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की देशना सुनकर बहुतो ने जैन धर्म अंगीकार किया। अपना अन्तिम समय नजदीक समझ कर तीन हजार साधुओं सहित सम्मेतशिखर पर गए और चैत्र शुक्ला पंचमी को निर्वाण सिधारे।

श्री अनन्तनाथ भगवान की प्राचीनता

इनकी प्रतिमा बहुत कम है। कुछ शोद्यार्थी इनको (भगवान) असुर जाति के कहते है इसके लिए ऐसा कहा जाता है कि पीपल वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग मुद्रा में बैठकर ध्यानमग्न थे। उनके साथ 66,000 साधु 62000 साध्वियां 62,000 श्रावक–श्राविकाएँ थे। इसका उल्लेख इजराइल के इतिहास (History of Phyenicia & History of Israil) में हैं। इसके साथ–साथ मिश्र में डेटियर पूजा करते समय श्री ऋषभदेव से अनन्तनाथ तक का वर्णन है।

3 भव

1. पद्यतर राजा
2. प्राणत देवलोक में देव
3. श्री अनन्तनाथ स्वामी जी

भगवान श्री अनन्नतनाथ जी

ओम अनन्त नाथ दाता, स्वामी अनन्त नाथ दाता।
शुद्ध मन से जो सुमिरे, पावे सुख साता।।ओम।।
सुयशा–सिंहसेन सुत, जग में विख्याता।स्वामी।
शहर अयोध्या जन्मे, सुर नर गुण गाता।।ओम।।
चिह्न–सिंचाण कनक तन, निरखी लो माता।स्वामी।
संयम ले जुए ज्ञानी, बन गये जग त्राता।।ओम।।
पतिव्रता चित्त पति में, बाल चाहे माता।स्वामी।
पणिहारी घटअन्दर, सेवक यूं ध्याता।।ओम।।
तरू अशोक तल बैठे, सबको समझाता ।स्वामी।
अनन्त गुणों के सागर, पार नहीं पाता।।ओम।।
"चौथमुनि" नित्य उठे के, चरणों शिर नाता।स्वामी।
शिवपुर स्थान बताओ, चित्त में यह चाता।।ओम।।

15. श्री धर्मनाथ भगवान

घातकी खण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में महिलपुर नाम का एक राज्य था उसका राजा का नाम ड्ढ़रथ था। वे महाशक्ति शाली थे। उनके राज्य में वैभव का कोई गर्व नहीं था। यद्यपि वे भोगविलास का भोग करते थे फिर भी इन्द्रिय सुखों से विरक्ति और देह के प्रति अनुराग रहित होकर सारे सुखों को परित्याग कर विमलवाहन मुनि से दीक्षा गृहण की तथा उन्होंने कठोर तप किया, बीस स्थानक व अर्हत भक्ति की अराधना से तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया। तदुपरान्त समाधिमरण प्राप्त कर देवलोक के देव के रूप में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में रत्नपुर नाम का एक नगर था। यहाँ भानु नाम का राजा राज्य करता था। वे गुणीवान थे, इनके गुणो की गणना करने में वृहस्पति भी असमर्थ थे। वे वीर, गुणी, वैभवशाली थे। उनकी रानी का नाम सुव्रता था। इधर ड्ढ़रथ का जीव आयुष्य पूर्ण कर सुव्रता की कुक्षी में वैशाख शुक्ला सप्तमी को अवतरण हुआ और माघ शुक्ला तृतीया को वज्र के लांछन सहित पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। बालक जब गर्भ में था। उस समय रानी सुव्रता को धर्म आराधना की इच्छा थी। इसलिए बालक का नाम धर्म रखा । योवनावस्था के प्राप्त होने पर माता पिता की आज्ञा से विवाह किया । पिता से राज्य ग्रहण किया।

भगवान धर्मनाथ ने पांच लाख वर्ष राज्य कर दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया और नागदत्ता नामक शिविका पर सवार होकर वप्रकांचन उद्यान में पहुँचे और माघ शुक्ला त्रयोदशी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हुए। दो वर्षो तक छद्मस्थ अवस्था में विचरण करते हुए पुनः वप्रकांचन उद्यान में लौट आए और अपने चार घाती कर्म को क्षय कर पौष शुक्ला पूर्णिमा को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ । देवों ने समवसरण की रचना की और भगवान ने अपनी प्रथम देशना में मुख्यतया कषाय के स्वरूप व उसके दुष्कृत्यों को सुनकर कई लोग प्रतिबोधित हुए। अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर सम्मेतशिखर जी पर्वत पर गए। एक माह में उपवास करते हुए ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को 800 मुनियों के साथ मोक्ष सिधारे।

श्री धर्मनाथ भगवान की प्राचीनता

भगवान की जन्मस्थली अयोध्या या इलाहाबाद से 22 किलोमीटर दूर रत्नपुर थी। सूर्यनदी के किनारे दो दिगम्बर मंदिर स्थापित है। इनकी प्रतिमाएं नागपुर संग्रहालय में सुरक्षित है व कार्योत्सर्ग मुद्रा की प्रतिमाएं इन्दौर संग्रहालय में सुरक्षित है ।

3 भव

1. दृढ़रथ
2. विजय देवलोक में देव
3. श्री धर्मनाथ प्रभुजी

भगवान श्री धर्मनाथ जी

ओम धर्मनाथ स्वामी, प्रभु धर्मनाथ ।स्वामी।
प्रभु तुम्हारी सेवा, भाग्योदय पामी।।ओम।।
मात सुव्रता रत्नपुरी में, नृप भानू नामी।प्रभु।
वज्र चिह्न सुशोभित, त्रिय जग के स्वामी।।ओम।।
असत्य अनित्य जग जाना, विषय कषाय वामी।प्रभु।
ज्ञाता दृष्टा जग के, सब के हित कामी।।ओम।।
हो अनन्त के संज्ञी, बन गये शिवगामी।प्रभु।
मुझको क्यों न बुलावे, क्या देखी शामी।।ओम।।
संदेश पहुंचा दे तुम तक, कौन भरे हामी।प्रभु।
आते ही सम कर ले, दे कुण उत्तर स्वामी।।ओम।।
पूरण प्रीत निभाओ, विनय यहीं स्वामी।प्रभु।
"चौथमल" की आशा, पूरण कर नामी।।ओम।।

16. श्री शांतिनाथ भगवान

श्री धर्मनाथ भगवान के निर्वाण के पश्चात् सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान अवतरित हुए उनका जीवन चरित्र जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि श्री शांतिनाथ भगवान के पूर्व में 11 भव हुए और बारहवें भव में श्री शांतिनाथ भगवान के रूप में अवतरित हुए। पूर्व के भव इस प्रकार है :

1. श्री सेन राजा 2. श्री अमितसेन राजा 3. श्री प्राणत नामक देवलोक में देव 4. श्री सुस्थितावर्त नामक विमान में श्री मणिचूल देव 5. श्री नन्दितावर्त नामक विमान में श्री दिव्यचूल देव 6. श्री अपराजित राजा

7. श्री अच्युत देवलोक में अच्युतेन्द्रदेव के सामलिक देव 8. श्री वृतीय ग्रेव्यक विमान में देव 10. श्री मेघरथ 11. श्री सर्वार्थ सिद्धि नामक विमान में देव

यहाँ पर मेघरथ का वर्णन करते हुए शान्तिनाथ भगवान के जीवन का वर्णन प्रस्तुत करेंगे :

महाराजा मेघरथ बहुत ही दयावान थे, वे दयावान होने के साथ–साथ वे बहुत ही वीर भी थे। वे प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व यहाँ तक अपने प्राण भी देने का साहस रखने वाले थे।

इस बात की परीक्षा करने के लिए देवताओं ने कबूतर व बाज का रूप धारण किया। कबूतर उड़ता हुआ व कांपता हुआ राजा के गोद में आकर बैठा। थोड़ी देर बाद बाज भी आया।

बाज ने अपने शिकार कबूतर को देने को कहा तो राजा ने स्पष्ट कह दिया कि शरण में आया हुआ उसे नहीं दिया जायेगा, उसके बजाय जो वस्तु मांगेगा दे दी जावेगी। बाज ने बोला कि वह मांसाहारी है, वे मांस ही लेंगे। राजा ने कहा कि वह कबूतर के बराबर अपने शरीर का माँस देगा। इसके लिये तराजू के पलड़े में कबूतर व दूसरे पलड़े में राजा धीरे–धीरे अपने हाथ–पैर आदि के टुकड़े करते हुए रखे लेकिन कबूतर के बराबर नहीं हो सका तो अंत में वे स्वयं तराजू के पलड़े में बैठ गये।

उसी समय कबूतर–बाज अचानक ही उड़कर गायब हो गए और आकाश से

दिव्यवाणी हुई कि राजा मेघरथ की जय। देवताओं ने क्षमा मांगी। आपकी करूणा की जानकारी के लिए हमारे द्वारा परीक्षा ली गई, आपकी विजय हुई। आपको कष्ट हुआ उसके लिए क्षमा करें।

इस घटना को सुनकर राजा मेघरथ ने संसार को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। लम्बे अन्तराल तक महान तप कर तीर्थकर नाम कर्म का बंध किया। आयुष्य पूर्ण कर सर्वार्थ सिद्धी नामक विमान में देव उत्पन्न हुआ।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के कुरु देश में हस्तिनापुर नामक नगर था। इस नगर के राजा का नाम विश्वसेन था। उसकी रानी का नाम अचिरा देवी था।

मेघरथ व सर्वार्थ सिद्धि विमान के उत्पन्न देव का जीव अचिरा के गर्भ में भाद्र कृष्णा सप्तमी को अवतरित हुआ।

इस समय में देश में महामारी का भारी प्रकोप चल रहा था। चारों ओर हाहाकार मच रहा था। यहां तक राजा विश्वसेन भी निराश हो गया लेकिन भगवान माता अचिरा के गर्भ में आते ही चारों ओर शांति हो गई। गर्भ का समय पूर्ण होने पर भाद्र कृष्णा त्रियोदशी के पुत्र का जन्म हुआ। गर्भ में होने पर महामारी का प्रकोप शांत हो जाने से उनका नाम शांतिनाथ रखा गया।

योवनावथा में आने पर राजा विश्वसेन ने कई राज कन्याओं से कुमार शांति का विवाह किया और उन्हें राज भार सौंप दिया। राजा शांतिनाथ ने भी कई वर्षों तक सांसरिक भोग किया, वे करूणामय के साथ–साथ वे वीर भी थे।

पूर्व जन्म के तप व करूणा व योद्धा के कारण से इस जन्म से भी चक्रवर्ती सम्राट हुए।

पूर्व जन्म के आचरित तप की स्मृति होने पर उन्हें विरक्ति हुई और सर्वार्थ नामक शिविका में बैठकर सहस्त्रभ्रवन उद्यान में गये वहां पर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी की अवस्थित होकर दीक्षित हुए।

कई वर्षों तक विचरण करते हुए पुनः हस्तीनापुर के उसी सहस्त्राभ्रवन उद्यान में आए और नंदी वृक्ष के नीचे अवस्थित हुए। उनके चारधाती कर्मों का क्षय हो गया और पोष शुक्ला नवमी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद देवो द्वारा समवसरण का निर्माण हुआ और इन्द्रिय विजय पर धर्म देशना दी अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर 900 मुनियों के साथ सम्मेत शिखर जी पर्वत की ओर गये वहां पर उन्हें ज्येष्ठ कृष्णा त्रियोदशी को निर्वाण प्राप्त हुआ।

श्री शांतिनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री शांतिनाथ भगवान की जन्मस्थली हस्तिनापुर जैन धर्म में प्रमुख और महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार वैदिक धर्म में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत से नष्ट हुआ बाद में प्राकृतिक व मानवीय आपदाओं से जीर्ण–शीर्ण हो रहा था लेकिन नगर की अपनी प्रमुखता बनी रही।

कुसन सम्वत 19 (ईसा पूर्व 38 वर्ष) की प्राचीन, 10 वी शताब्दी की कई प्रतिमाएं मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त हुई वे सभी लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार नवीं शताब्दी की खेड़ब्रह्मा (गुजरात) उड़ीसा, बंगाल, विहार से प्राप्त हुई वे सभी बिहार, भुवनेश्वर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त 9 वीं शताब्दी की एक प्रतिमा जो कोशाम्बी से प्राप्त हुई है वह इलाहाबाद के संग्रहालय में सुरक्षित है।

12 भव

1. श्रीषेण राजा
2. उत्तर कुरू युगलिक
3. सौधर्म देवलोक में देव
4. अमित सेन
5. प्राणत देवलोक में देव
6. बलभद्र (महाविदेह)
7. अच्युत देवलोक में देव
8. राजा वज्र कुंडल
9. नव में ग्रेवेयक में देव
10. मेघरथ राजा
11. सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव
12. श्री शांतिनाथ प्रभु जी

भगवान श्री शान्तिनाथ जी

ओम शान्ति शान्ति करे, प्रभु शान्ति शान्ति करे।
पाप पुंज विध्वसंक, मन तन दोष हरे।।ओम।।
अचला अंगज उपने, विश्वसेन प्यारे।प्रभु।
हस्तिनापुर के हर्षे, नर नारी सारे।।ओम।।
राज्य भूमि में छाई, महामारी भारी।प्रभु।
गर्भ बीच में प्रभु ने, शान्ति विस्तारी।।ओम।।
जननी जनक ज्योतिषी, शान्ति नाम दिया ।प्रभु।
पूर्ण पुण्य से प्रभु ने, छः खण्ड राज किया ।।ओम।।
विषय विकार विदारक, व्याधि विष विसरे।प्रभु।
सदन शरीर सुपुत्र की, आशा तुरंत फले।।ओम।।
शुद्ध भाव से सज्जन, शान्ति जाप सुमरे।प्रभु।
चमत्कार हो उसके, "चौथमल" उच्चरे।।ओम।।

17. श्री कुंथुनाथ भगवान

16 वें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान के निर्वाण के पश्चात् सत्रहवें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ भगवान हुए है। जिनकी जीवनी व प्राचीनता इस प्रकार है।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में खड़्गी नाम का नगर था। वहाँ के राजा सिंहवाह थे। वे न्याय परायण, पाप–नाशक, बलशाली, वैभवशाली, बुद्धिशाली के साथ–साथ धर्म प्रेमी थे। वे श्रमण की तरह असक्ति रहित भोजन करते थे और अशक्तिहीन होकर सांसरिक सुखों का भोग करते थे।

एक दिन संसार से विरक्त होकर आचार्य झंवर से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण के पश्चात् बीस स्थानक–अर्हत भक्ति अराधना कर तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया। कालचक्र के फलस्वरूप मृत्यु वरण कर सर्वार्थ सिद्धि विमान में देव उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नाम का नगर था। यह नगर मंदिरों की नगरी कहलाता था। इस नगरी के राजा का सूर था, वे धर्म प्रिय, शांत प्रिय थे, उनकी रानी का नाम ''श्री'' था।

सिंहवाह का जीव अपना आयुष्य पूर्ण कर ''श्री देवी'' से कोख में श्रावण कृष्णा नवमी को अवतरित हुआ और समय पूर्ण होने पर वैशाख कृष्णा चतुर्दशी को पुत्र के रूप में जन्म हुआ। जन्मोत्सव मनाया गया। जब बालक गर्भ में था उस समय रानी ने कुंथु राजशाही देखा इसलिए बालक का नाम कुंथु रखा।

योवनावस्था प्राप्त होने के पश्चात पिता की आज्ञा से राजकन्याओं से विवाह किया।

भगवान के जन्म के 23750 वर्ष के पश्चात् पिता ने पुत्र को राज्य सुपुर्द किया। राज्यभार ग्रहण करने के 23750 वर्ष के पश्चातृ आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ। भगवान ने उसकी पूजा की। चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए कई राजाओं को अपने अधीन में ले लिया। छः माह में भरत क्षेत्र को जीतकर पुनः हस्तिनापुर लौट आए।

सांसरिक भोगावली को पूर्ण कर संसार से विरक्त होकर एक वर्ष तक दान

दिया और राजा का भार अपने पुत्र को सुपुर्द कर सहस्त्राभवन उद्यान में गए और वैशाख कृष्णा पंचमी को एक हजार राजाओं सहित दीक्षित हुए। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें मनः पर्याय ज्ञान उत्पन्न हुए। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें मनः पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। सोलह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में विचरण करते रहे और बाद में पुनः सहस्त्राभवन उद्यान में लौट आए और तिलक वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर अवस्थित हुए तब चार धाती कर्मो का क्षय हो जाने से चैत्र शुक्ला तृतीया को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

देवों द्वारा समवसरण की रचना की गई–समवसरण पर विराज कर भगवान ने अपनी देशना में कहा कि जीव चौरासी लाख योनि रूपी भंवरों में यह पुर्ण संसार दुःखों का कारण है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त पर सुदृढ़मन शुद्धि, विवेक होना चाहिए। इसलिए प्रत्येक जीव को मन शुद्ध रखना चाहिए। मन शुद्धि से ही मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है। मन विशुद्धि के कारण ही राग–द्वेष, मोह–माया आदि उत्पन्न होते है। उनकी यह देशना सुनकर कई लोग प्रभावित हुए और स्वयंस्थ आदि 35 गणधर हुए।

भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद पृथ्वी पर विचरण करते हुए जीवों के लिए मुक्ति के लिए उपदेश देते रहे और 23734 वर्ष पश्चात् अपना अंतिम समय निकट जानकर वे सम्मेत शिखर पर्वत की ओर गए और एक माह के उपवास के साथ 1000 साधुओं के साथ वैशाख–कृष्णा प्रतिपध को मोक्ष सिधारें।

श्री कुंथुनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री कुंथुनाथ की जन्मस्थली हस्तिनापुर थी तथा इनकी जीवनी का उल्लेख ''उन्तरपुराण'' में आता है। इनकी 12 वीं शताब्दी की 6 धातु की मुर्तियां नागपुर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार इनकी काउसग्र मुद्रा की मूर्ति जो उड़ीसा के बरभुजा जी व त्रिशुल गुफा से प्राप्त हुई तथा एक अन्य मूर्ति 12 वीं शताब्दी की बजरंगगढ़ से प्राप्त हुई। वे व अन्य मूर्ति अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित हैं एक धातु की पंचतीर्थी मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. सिंह वाहन राजा
2. सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव
3. श्री कुंथुनाथ प्रभु जी

भगवान श्री कुंथुनाथ जी

ओम कुंथु वीतरागी, प्रभु कुंथु वीतरागी।
दर्श आपका पाकर, भाग्य दशा जागी।।ओम।।
सुरसेन श्रीदेवी, जगपुर बड़ भागी।प्रभु।
हेम वरण अज लक्षण, सब अंग सोभागी।।ओम।।
चक्रवर्ती की रिद्धि, जिनजी है त्यागा।प्रभु।
अनन्त ज्ञान प्रभु पाया, कर्म गया भागी।।ओम।।
सहस्त्रों वाणीसुनके, हो गये वैरागी।प्रभु।
अचल अटल सुख पाये, होकर निर रागी।।ओम।।
डाकू तस्कर पापी बनता अनुरागी।प्रभु।
परम पवित्र हो जावे, कुकर्म ने त्यागी।।ओम।।
विजय होय स्मरण से, सुमति हो रागी।प्रभु।
"चौथमल" की तुमसे, अहो निश लग जागी।।ओम।।

18. श्री अरनाथ भगवान

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सुसीमा नाम की नगरी थी जिसका राजा का नाम धनपति था। वे साहसी, धर्मपरायण, परोपकारी, दयावान थें वे अपने शासन में भी दण्ड देने का प्रयोग नहीं करते जिसके कारण से प्रजा में किसी प्रकार का कलह व विवाद नहीं था। उन्होंने संसार से विरक्त होकर संवर नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण की। धर्म पालन, तप करते हुए विहार करते हुए उन्होंने बीस स्थानक व अर्हत् भक्ति की आराधना करते हुए तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया। कालान्तर में काल धर्म को प्राप्त कर ग्रेवेयक विमान में देव उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नाम की नगरी थी। उसके राजा का नाम सुदर्शन था। वे एक ऐसे राजा थे जिन्होंने सेवा कार्य के लिए जन्म लिया है। वे वैभवशाली, दानवीर, भातृत्व की भावना रखने वाले थे। उनकी रानी का नाम ''देवी'' था। राजा सांसरिक भोग भोगते हुए समय क्रम के अनुसार धनपति का जीव अपनी आयुष्य पूर्ण कर फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को रानी देवी के गर्भ में अवतरित हुआ। समय पूर्ण होने पर अग्रहण शुक्ला दशमी को नन्दयावर्त लक्षण के साथ बालक ने जन्म लिया। महारानीदेवी ने गर्भावस्था में स्वप्न में चक्के का 'अर' देखा, इसलिए बालक नाम ''अर'' रखा। योवनावस्था होने पर पिता के आदेश से यथासमय विवाह किया और एक सौ हजार वर्ष पूर्ण होने पर राज्य का भार ग्रहण किया।

21,000 वर्ष शासन करने के बाद आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। अतः ..... का अनुसरण करते हुए 400 वर्षो में भरत क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली।

इसके कई वर्षों पश्चात् तीर्थ स्थापित करने का विचार किया। एक वर्ष तक वर्षीदान देकर अपने पुत्र अरिनन्दन को राज्य को सुपुर्द कर ''विजय'' नामक शिविका में बैठकर उद्यान में प्रवेश कर 1000 राजाओं सहित अग्रहण शुक्ला एकादशी दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के समय उन्हें मन पयर्व ज्ञान उत्पन्न हुआ, प्रभु बिना सोचे–बैठे उपवास करते हुए तीन वर्ष तक छदमस्थ अवस्था में विहार करते रहे तदुपरान्त पुनः सहस्त्राभ्रवन उद्यान में लौटे वहां पर आम्रवृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर अवस्थित हुए और चार धात्री कर्म का क्षय कर कार्तिक शुक्ला द्वादशी को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

प्रभु समवसरण पर विराज कर देशना दी कि संसार के चार पुरूषार्थ मोक्ष सबसे श्रेष्ठ है। आत्मार्थी मुनि को न तो शेर का, न बोधल्य, न चोर का, न अग्नि का, जल का कोई भय नहीं था।

प्रभु की देशना सुनकर कई लोगों ने चरित्र धर्म स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि संसार में कोई भी जीवन सुखी नहीं है, सभी दुखी है।

भगवान 1000 मुनियों सहित अग्रहण शुक्ला दशमी को निर्वाण सिधारे।

भगवान अरनाथ की 84000 वर्ष आयु थी।

अरनाथ भगवान की प्राचीनता

भगवान अरनाथ की जन्म स्थली हस्तिनापुर थी। इनके जीवन का भी उत्तर पुराण में उल्लेख है। यहां पर इनको असुर जाति का बताया है और पत्नि निम्न जाति का होने का उल्लेख है। अगुनर निकाय में भी (तीसरी शताब्दी ई.पू.) में उल्लेख मिलता है। मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त खण्डित मूर्ति जो गुप्त समय की है लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। बारभुजा व त्रिशुल गुफा में भी इनकी मुर्ति में उत्कीर्ण है।

3 भव

1. धनपति
2. नवमें ग्रेवेयक में देव
3. श्री अरनाथ प्रभु जी

भगवान श्री अरनाथ जी

ओम जय जिनवर राई, प्रभु जय जिनवर राई।
अरनाथ जग नायक, इंद्र नमे आई।।ओम।।
सुदर्शन है तात मात, देवी हे सुख दाई ।।प्रभु।।
जयंत विमान से आये, हस्तिनापुर मांई।।ओम।।
एक सहस्त्र आठ है लक्षण, कंचन छवि छाई।प्रभु।
हो चक्रवर्ती छः खण्ड के, आज्ञा वरताई।।ओम।।
तुम धर्म चक्रवर्ती हो, तीनो लोक मांई।प्रभु।
राज्य किया एक छत्तर, ये है अधिकाई।।ओम।।
द्वीप समान प्रभु है, शरण गृहो आई।प्रभु।
शिव स्थान प्रभु दीजे, अनुचर के तांई।।ओम।।
अरनाथ जिनेश्वर, "चौथमल" थाई।प्रभु।
ज्ञान सिरि बक्षाओ, जो तुमने पाई।।ओम।।

19. श्री मल्लिनाथ भगवान

अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथ भगवान का जीवन चरित्र के पश्चात् श्री मल्लिनाथ भगवान का चरित्र इस प्रकार है :–

पूर्व भव – जम्बूद्वीप के अपर विदेह में वीतशोक नामक एक नगर था उसको राजा का नाम ''बल'' था जैसा नाम वैसा ही गुण – वे उतने ही बलशाली थे जितना हाथी में बल होता है। वे रूपवान थे– उनकी पत्नी का नाम ''धारिणी'' था। इनके एक महाबल नाम का महाबलशाली पुत्र था। संसार से विरक्तहोकर उन्होंने महाबल को राज्य सुपुर्द कर दीक्षा ग्रहण की।

योवनावस्था प्राप्त होने पर पिता की आज्ञा से पांच सौ कन्याओं से विवाह किया। महाबल के अलच, धरण, पूरण, वसु, वेश्रवण ओर अभिचंद्र नामक बाल मित्र थे। एक दिन उद्यान में मुनिगण आए। उनका प्रवचन सुनकर बल राजा ने संसार से विरक्त होकर अपने पुत्र महाबल को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण कर ली। महाबल की रानी कमल श्री को एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम बलभद्र था। महाबल ने अपने मित्रों से कहा कि वह अब संसार से मुक्ति पाकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता है। तुम लोग क्या करोगे। मित्रों ने कहा कि जिस प्रकार सब साथ रहे उसी प्रकार हम सभी दीक्षा ग्रहण करेंगे। राजा महाबल ने अपने पुत्र बलभद्र को राज्य सुपुर्द कर सभी मित्रों सहित दीक्षा ग्रहण की। सभी सातों मित्रों ने यह प्रतिज्ञा की सभी एक जैसी ही तपस्या करेंगे और एक दिन छोड़ दूसरे दिन उपवास करने लगे।

अधिक फल की कामना से महाबल ने अपने मित्रों को धोखे में रखकर पारणे के दिन वह कोई न कोई बीमारी का बहाना बनाकर अधिक तपस्या करने लगे। अर्हत्, पूजा व बीस स्थानक की पूजा व उपासना कर तीर्थंकर गौत्र कर्म उपार्जित किया लेकिन तपस्या में मिथ्याचार करने के कारण स्त्रीदेह का बंध किया। जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में मिथिला नामक की एक नगरी थी। इस नगरी के सभी वासी काफी धर्मिष्ठ थे। इस नगरी के इश्वाकु वंश के राजा कुम्भ थे उनकी पत्नी का नाम रानी पद्मावती था।

महाबल का जीव अपनी आयुष्य पूर्ण कर फाल्गुण शुक्ला चतुर्थी के दिन पद्मावती की कुक्षी में अवतरित हुआ। गर्भावस्था में रानी पद्मावती को दोहद उत्पन्न हुआ कि वह पांच रंगो के सुगन्धित मल्ल देखा। समयानुसार मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को एक सुंदर कन्या को जन्म दिया। गर्भावस्था में उत्पन्न दोहद के आधार पर कन्या का नाम मल्लीकुमारी रखा गया। मल्लीकुमारी को गुलदस्ते का बड़ा शौक था। राजकुमारी का शौक पूरा करने के लिए देश–विदेश से अद्भूत गुलदस्ते बनाकर लाने लगे। इससे कहानी से उसकी प्रसिद्धी फैल गई।

उधर मल्लीकुमारी (पूर्वभव का महाबल) के छः ही मित्रों ने भी अपने पुण्योदय के रूप में निम्न प्रकार से जन्म लिया।

(1) अचल – साकेतनगर के प्रतिबुद्धि नाम के राजा बने।
(2) धरण – चम्पापुरी नगरी के चन्द्रच्छाय नाम के राजा बने।
(3) पूरण – श्रावस्ती नगरी के एकमी नाम के राजा बने।
(4) वसु – वाराणसी नगरी के शंख नाम के राजा बने।
(5) वेश्रवण – हस्तिनापुर के अदीन शत्रु नाम के राजा बने।
(6) अभिचंद्र – कपिल्य नगरी के जिनशत्रु के नाम के राजा बने ।

एक बार मल्लीकुमारी का भाई श्री मल ने प्रमोद स्वरूप एक विचित्र चित्रशाला बनवाई। चित्रशाला के लिए एक कुशल चित्रकार को आमन्त्रित किया। वह चित्रकार ऐसा कुशल था कि किसी भी वस्तु का एक भाग भी देख लेता तो इतनी बारिकी से चित्र रूप में बना देता और जो मूल रूप में कोई भिन्नता नहीं होती। संयोगवश एक दिन चित्रकार ने राजमहल के बरामदे की झाली में कुमारी के पैर के अंगूठे को देखा उस आधार पर मल्लिकुमारी का हुबुहु चित्र दीवार पर बना, श्रृंगारित किया।

चित्रशाला के पूर्ण होने पर राजकुमार अपनी रानियों के साथ चित्रशाला में आए। सभी चित्रों को देखा। उन चित्रों में राजकुमारी के चित्र को देखा। राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसको प्रमाणित करने के लिए राजकुमार ने धायमाता को बुलाया, उसने कहा कि यह राजकुमारी है । राजकुमार ने बोला कि यह राजकुमारी

नही, उनका चित्र है। राजकुमार ने तत्काल चित्रकार को बुलाया और उसके बहिन का चित्र कैसे बना तो उसने कहा कि उसने जाली से केवल अंगूठे को देखा और अपनी कला पारखी के आधार पर साक्षात् चित्र बना दिया। राजकुमार के गुस्से के कारण चित्रकार का अंगुठा कटवाकर देश निकाला दे दिया। नाराज चित्रकार ने राजकुमारी का चित्र बनाकर हस्तिनापुर के राजा अदीनशत्रु को भेंट किया । चित्र की सुंदरता देख कर राजा राजकुमारी की ओर आकर्षित हुआ। इस प्रकार राजकुमार के सौदर्य की प्रसिद्धि फैलती रही। उक्त छः ही राजाओं ने राजा कुंभ को विवाह के लिए संदेश भेजे और चारों ओर से राजा को युद्ध के लिए घेर लिया।

राजा कुंभ चारों ओर से राज्य को घिरा देखकर चिंतित हो गया। मल्लिकुमारी ने देखा कि उसकी वजह से राजा (पिता) चिंता में डूब गए। राजकुमारी को जन्म से अवधि ज्ञान था। उसने जानकर पिता से कहा कि आप चिंता न करे। मैं पूर्व से जानती थी कि ऐसा होने वाला है। आप सभी राजाओं को अलग–अलग करके विवाह के लिए आमंत्रित करें। राजकुमारी ने एक सुंदर महल बनवाया और छः अलग–अलग कक्ष बनाए। छः कक्षों के बीच एक अपनी स्वर्ण की सुंदर प्रतिमा बनवा कर स्थापित कर दी। उसके ऊपर एक ढक्कन लगा दिया और प्रतिदिन खाना खाकर कुछ झूठन ढक्कन खोलकर उसमें डाल देती ।

छः ही राजाओं को राजा कुंभ ने विवाह के लिए अलग–अलग आमंत्रित कर अलग–अलग कक्ष में ठहरा दिया वे स्वर्णयुक्त प्रतिमा को देखकर मुग्ध हो रहे थे। कुछ दिन पश्चात अन्न सड़ने लगा तो अपनी दासी को कहकर ढक्कन खुलवा दिया और राजाओं के दरवाजे खुलवा दिये। सड़े हुए भोजन की गंध के कारण उनका मन घबराने लगा। तब राजकुमारी सामने आकर बोली कि अब तक सौदर्य की तारीफ कर रहे थे और अब भागने को तैयार है यह आपका कैसा सौंदर्य है ? छः ही राजाओं ने बोला कि आप हमारा मजाक क्यों कर रही हो? तब राजकुमारी बोली – विवेकशील व्यक्ति की इस शरीर पर जो भीतर व बाहर है एक समान ही अशुद्ध है। आसक्ति कैसे रह सकती है? राजकुमारी ने पूर्व जन्म की सम्पूर्ण कहानी सुनाई कि हम सभी मित्र थे। ऐसे समय में सभी राजाओं को पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ और पश्चाताप् करने लगे – उन्होंने अपने–अपने पुत्रों को राज्यभार सुपुर्द कर

दीक्षा ग्रहण करने की तैयारी करने लगे और प्रतिज्ञा बद्ध होकर एक साथ तपस्या करते थे। यह अच्छा हुआ कि हमको नरक में जाने से बचा लिया। राजकुमारी ने एक वर्ष तक वर्षीदान दिया और जयंती नामक शिविका पर बैठकर उद्यान में जाकर तीन दिन का उपवास कर मार्गशीर्ष शुक्ला 11 (एकादशी) को दीक्षा ग्रहण की ।दीक्षा के साथ ही मनः पर्याव ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसी दिन ''केवल ज्ञान'' की प्राप्ति हुई। केवल ज्ञान प्राप्त होने पर अपने प्रथम प्रवचन में ''समता'' धर्म ही प्रमुख है। समता का मंत्र प्राप्त होने पर ही उसको न यज्ञ की, न प्रार्थना की, न तप की आवश्यकता ह और बिना मूल्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकते है। यह देशना सुनकर छः राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की। देशना देते हुए नगर नगर विचरण करते रहे और अपना अंतिम समय नजदीक जानकर वे 500 साध्वी व 500 साधुओं के साथ सम्मेत शिखर पर्वत पर पहुंचे और फाल्गुण शुक्ला दशमी को निर्वाण पधारे।

श्री मल्लिनाथ भगवान को स्त्री के रूप में देखा जाता है, उनकी खण्डित प्रतिमा मिली जिसका वर्णन आगे दिया गया है।

श्री मल्लिनाथ भगवान की प्राचीनता

भगवान मल्लिनाथ की जन्म स्थली मिथिला थी। इनके चार कल्याणक मिथिला में ही हुए। चौथे आरे में पहली महिला तीर्थंकर है। उत्तरप्रदेश के ऊनी नगर में 12 वीं शताब्दी की एक चेहरे रहित मूर्ति प्राप्त हुई जिसके आगे (वक्षस्थल) व पीछे से स्त्री के बाल से स्पष्ट है कि स्त्री तीर्थंकर मल्लिनाथ की प्रतिमा है, चिन्ह भी मल्लीनाथ का ही है । जिसको पुरातत्वेता स्तम्भ डॉ. यू.आर. शाह ने प्रमाणित की है। यह लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

अन्य पाषाण की मूर्ति 11 वीं शताब्दी मान स्तम्भ लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। पहली शताब्दी ई.पू. की पाषाण की मूर्ति जो मथुरा कंकाली टीलों से प्राप्त हुई जो लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. महाबल राजा

2. विजयावंत में देव 3. श्री मल्लिनाथ स्वामी जी तथ पाठान्तर में 9 भव

भगवान श्री मल्लिनाथ जी

ओम जय तीरथ कर्त्ता, स्वामी जय तीरथ कर्त्ता।
मल्लीनाथ हो मंगल, दुःख पीड़ा हरता।।ओम।।
कुम्भ भूप मिथिला का, प्रभावती वरता।स्वामी।
अपराजित से आये, महोत्सव सुर करता।।ओम।।
हरा रूप मन मोहन, कलश चिह्न धरता।स्वामी।
लोकालोक प्रकाशा, सुर नर मन हरता।।ओम।।
देवे देशना प्रभुवर, शुद्ध भाव भरता।स्वामी।
चार तीरथ तुम थामे, जो भव जल तरता।।ओम।।
तीरे वही भव सागर, उन्मारग तजता।स्वामी।
फूटी नौका तज के, श्रेष्ठ नाव चढ़ता।।ओम।।
"चौथमल" की अर्ज आप से, सुख संपत कर्त्ता।स्वामी।
धर्म उद्योत करुं मैं, रहूं चलता फिरता ।।ओम।।

20. श्री मुनिसुव्रत भगवान

उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ भगवान के निर्वाण के पश्चात् मुनिसुव्रत भगवान अवतरित हुए जिसका जीवन परिचय इस प्रकार है :

जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह में चम्पा नाम की नगरी थी। उस नगरी के राजा का नाम सुरश्रेष्ठ था वह दानवीर, रणवीर, आचारवीर और धर्मवीर थे। वे अपना कौशल रणभूमि में नहीं वरन् युद्धाभ्यास के समय ही दिखा पाते क्योंकि वे राजाओं को वशीभूत कर देते थे।

एक दिन मुनिनन्दन चम्पा नगरी में आए उनके दर्शन–वंदन करने व उनकी देशना सुनने के लिए राजा संसार से विरक्त हो गए और वे दीक्षित होकर सम्यक् चरित्र का पालन करने लगे उन्होंने अर्हत भक्ति और बीस स्थानक की पूजा कर तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया मृत्यु के पश्चात् प्राणत नामक देवलोक में देव उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में राजगृह नाम का एक नगर था वहां के राजा सुमित्र थे। वे उदार, दृढ़, गम्भीर, आदि गुणों से भरे हुए थे। उनकी रानी पद्मावती था।

सर्वश्रेष्ठ राम का जीव देवलोक से अपना समय पूर्ण कर रानी पद्मावती की कुक्षी में श्रावण माह की पूर्णिमा को अवतरित हुआ। समय पूर्ण होने पर ज्येष्ठ कृष्णा अष्ठमी को कूर्म लांछन युक्त पुत्र का जन्म हुआ। दूसरे दिन जन्मोत्सव का आयोजन हुआ बालक जब गर्भ में था, उसकी माँ (रानी पद्मावती) मुनि जैसे व्रत रखे। अतः बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा। योवनावस्था प्राप्त होने पर उनका विवाह प्रभावती आदि कन्याओं से हुआ। वली का भोग करते हुए प्रभावती ने पुत्र को जन्म दियां 7500 वर्ष व्यतीत होने पर सुव्रत राजा ने अपने राज्य का भार अपने पुत्र को सुपुर्द किया। 45000 वर्ष राज्य का संचालन कर राज्य का भार अपने पुत्र को दिया और संसार से विरक्त हुई और वर्षीदान देने पश्चात् अपराजित शिविका पर बैठकर नीलगुहा नामक उद्यान में गए और फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को दो दिन के उपवास के साथ और हजार राजाओं सहित दीक्षित हुए। भगवान ने छद्म अवस्था में ग्यारह माह तक विचरण करते हुए पुनः नीलागुहा उद्यान में आए और

चम्पा के वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर उपस्थित हुए। धाती कर्म के क्षय होने पर फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई।

भगवान ने अपनी देशना संयम, सत्य, शुचिता, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप, क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्भोयिता, दर्श धर्म बतलाए। अपने शरीर की इच्छा से रहित ममत्व–वर्जित, सत्कार और अपमान में समाहित परिग्रह और उपसर्ग सहन करने में समर्श, मैत्री प्रमोद, करूणा, क्षमाशील विनय वान, इन्द्रियमदनकारी प्रति श्रद्धायुक्त व पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत सम्यक्त के मूल है। और 35 नियम ग्रहस्थ के लिए अनुकूल है।

नियमों में प्रतिदिन धर्म श्रवण करना, अजीर्ण होने पर भोजन नहीं करना, प्रति ज्ञानवृद्ध की पूजा करना सुनकर बहुतसे मनुष्यों ने साधु–धर्म स्वीकार किया और अनेकों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया इस प्रकार की देशना सुनाते हुए गृगुकच्छ नगर में पधारे वहां जित शत्रु राजा अपने अश्व पर बैठकर आए और सबने देशना सुनी। अश्व ने कान खड़े कर देशना सुनी। देशना शेष होने पर गणभूत ने पूछा कि देशना का लाभ किसको हुआ। भगवान ने कहा कि धर्मलाभ जिन शत्रु के अश्व को छोड़कर किसी को भी नहीं हुआ।

इस प्रकार केवल ज्ञान प्राप्त होने के 7588 11/1–2 माह (अर्थात् 7588) वर्ष विचरण करते रहे और अन्तिम समय निकट जानकार 1000 शिष्यों सहित सम्मेदशिखर पर्वत जाकर एक माह के उपवास के साथ ज्येष्ठ नवमी को निर्वाण पधारें।

श्री मुनिसुव्रत भगवान की प्राचीनता

श्री मुनिसुव्रत भगवान की जन्मस्थली राजगृह थी। ई.पू. चौथी शताब्दी में राजगृह मगध देश की राजधानी थी। हिन्दूधर्म के स्वामी ज्ञाननंद जी के अनुसार 1, 83, 75, 17, 104 वर्ष पूर्व राम अयोध्या में पैदा हुए थे। उस समय यही काल मुनि सुव्रत भगवान का है। तिब्बती धर्म के अनुसार मुनिसुव्रत भगवान ने इस क्षेत्र के कैलाश का भ्रमण किया। ई.पू. दूसरी शताब्दी की मूर्ति मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त हुई वह लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

कुसन संवत् 49 (ई.पू. 8 वीं शताब्दी) की एक मूर्ति का टुकड़ा जिसकी मूल

प्रति उपलब्ध नहीं है उस पर ब्रह्म लिपी में लिखा है :–

''अरहतो मुनि सुव्रतस्य प्रतिमा''

12 वीं शताब्दी की मूर्ति जयपुर संग्रहालय में व 10 वीं शताब्दी कीमूर्ति गुजरात के कुम्भालिया मंदिर में व 9 वीं शताब्दी की मूर्ति राजगृह में उपलब्ध है।

3 भव

1. सुरविष्ट राजा
2. प्राणत देवलोक में देव
3. श्री मुनिसुव्रत स्वामी

भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी जी

ओम मुनिसुव्रत स्वामी, स्वामी मुनिसुव्रत स्वामीं
संकट नाशक प्रभुवर, प्रणमूं सिर नामी ।।ओम।।
अपराजित से चवकर, राजगृही आये ।स्वामी।
नृप सुमित्र कुल दीपक, पद्मा के जाये।।ओम।।
कूर्म सुलक्षणा सोहे, श्याम वर्ण धारे।स्वामी।
केवल ज्ञान उजागर, भक्तन रखवारे।।ओम।।
विचार विचार कर प्रभु ने, लाखो जन तारे।स्वामी।
आवागमन मिटाकर, पाये सुख सारे।।ओम।।
"ऊं हीमुनिसुव्रत" जाप जपे भारी ।स्वामी।
मन्द ग्रह टल जावे, पावे सुख भारी ।।ओम।।
जो नर शुचि मन ध्यावे, सब दुःख विनसावे।स्वामी।
"चौथमल" मन वांछित, सुख सम्पति पावे।।ओम।।

21. श्री नमिनाथ भगवान

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत भगवान का जीवन चरित्र का वर्णन पिछले अंक में वर्णन किया। श्री मुनिसुव्रत भगवान के निर्वाण के लम्बे अंतराल के बाद श्री नमिनाथ भगवान का अवतरण हुआ जिसका वर्णन इस प्रकार है :–

जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में कोशाम्बी नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा का नाम सिद्धार्थ था। वे अनुशासित पंसदी थे व उनकी गरिमा, दृढ़ता, शौर्य, बुद्धि व अन्य सभी गुणों से परिपूर्ण थे उनके पास अपरिमित संपदा व वैभव था वे भी सभी के कल्याण के लिए थी। उनका मन हमेशा धर्म में लगा रहता था। एक दिन उन्होंने संसार से विरक्त होकर सभी सम्पदा को छोड़कर मुनि सुदर्शन से दीक्षा अंगीकार की। तदुपरांत उन्होंने कठोर तप, बीस स्थानक की आराधना द्वारा तीर्थंकर गौत्र कर्म का उपार्जन किया एवं मृत्यु पश्चात् अपराजित विमान में उत्पन्न हुए।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मिथिला नाम की नगरी थी, उसके राजा का नाम विजय था और वे अखण्ड प्रतापी होकर राज्य का शासन सम्भाल रहे थे उनहोंने बिना किसी भय के अपनी सैन्य शक्ति को परिपूर्ण कर दिया। लेकिन इस सैन्य शक्ति का प्रयोग न करते हुए प्रेम से सभी को वशीभूत कर लेते। ऐसे प्रतापी राजा की रानी का नाम वैप्रा था।

अपनी आयु को पूर्ण कर सिद्धार्थ का जीव अपराजित विमान से वैप्रा रानी के गर्भ में अश्विनी शुक्ला पूर्णिमा को प्रविष्ठ हुआ। समय पूर्ण होने पर श्रावण कृष्णा अष्ठमी को नीलकमल लांछण युक्त पुत्र का जन्म हुआ। जब बालक गर्भ में था तब शत्रु सेना ने आकर नगर को घेर लिया। राजा विजय चिंतित हो गए। तभी एक ज्ञानी ने कहा कि रानी राजमहल के छत पर जाकर शत्रु सेना की ओर देखे तो स्थिति सामान्य हो जाएगी। रानी छत पर चढ़कर शत्रु सेना को निहारने लगी तो गर्भ में अवस्थित बालक की अजय शत्रु सेना पर पड़ी तो सभी शांत हो गए और युद्ध को बीच में छोड़कर समर्पण कर नमन किया। इसलिए बालक का नाम "नभि" रखा गया।

बाल्यावस्था व्यतीत होने पर पिता के आदेश से विवाह किया। 2500 वर्ष की आयु होने पर पिता के आदेश से राज्यभार सम्भाला राज्य ग्रहण के 5000 हजार वर्ष पश्चात् उन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ और एक वर्ष तक दान देते हुए आषाढ़ कृष्णा नवमी को दो दिन के उपवास सहित 1000 राजाओं के साथ दीक्षित हुए। दीक्षा ग्रहण करते ही भगवान को मन पर्यव ज्ञान की प्राप्ति हुई। नौ माह पश्चात पुनः सहस्त्राभ्रवन उद्यान में आए और षष्ठ तप के साथ बार धाती कर्मों के क्षय होने पर अगहन शुक्ला एकादशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् प्रथम देशना में सम्यक दर्शन के स्वरूप पर विवेचना की कि यह संसार असार है संसार के ऐश्वर्य व वैभव जल की लहर की तरह अस्थिर व चंचल हैं। उन्होंने यह भी कहा कि शरीर से अनासक्त होकर मोक्षमार्ग के लिए यति धर्म को स्वीकार करे।

भगवान ने अपना अंतिम समय नजदीक जानकर भगवान सम्मेत शिखर पर्वत पर एक माह के उपवास सहित वैशाख शुक्ला दशमी को निर्वाण सिधारे।

श्री नमिनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री नमिनाथ भगवान मिथिला के राजा थे और जनक के वंश के थे। इनकी मूर्तियां बहुत कम है। 11वीं शताब्दी की 24 छोटी मुर्तियाँ मय परिकर व चिन्ह के पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार से एक पाषाण की मूर्ति उड़ीसा के चारभुजा की गुफा में उपलब्ध है। इसी प्रकार बंगाल के मयुरापुर व कुम्भारिया (गुजरात) में भी उपलब्ध है व दो मूर्तियां लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

3 भव

1. सिद्धारथ राजा
2. प्राणत देवलोक में देव
3. श्री नमिनाथ प्रभुजी

भगवान श्री नमिनाथ जी

ओम जय जय नमिराया, प्रभु जय जय नमिराया।
सुयश तेरा भगवन, जग में अति छाया।।ओम।।
सुंदर मथुरा नगरी, विजय सेन राया।प्रभु।
प्राणत स्वर्ग से आये, विप्रा के जाया।।ओम।।
चिह्न कमल का सोहे, हेम वरण काया।प्रभु।
सकल विश्व के ज्ञाता, रख छतर छाया।।ओम।।
पीड़ित जन्म मरण से, शरण तेरे आया।प्रभु।
करूणानिधि दया कर, पार करो नैया।।ओम।।
पाप नसे सुमिरण से, होवे मन चाया। प्रभु।
हटे विघ्न भय दूरे, जपते नमिराया।।ओम।
सुखी रहे जग प्राणी, मुझ मन में भाया ।प्रभु।
"चौथमल" की अर्जी, सुन लो जिनराया।।ओम।।

22. श्री नेमिनाथ भगवान

श्री नमिनाथ भगवान के निर्वाण के पश्चात् श्री नेमिनाथ भगवान का अवतरण हुआ। श्री नेमिनाथ भगवान का वर्तमान का नवाँ भव है। इसके पूर्व आठ भव हुए जिसका वर्णन इस प्रकार है :–

प्रथम भव : धन नाम के राजपूत थे – इपने पुण्यों के प्रभाव से

द्वितीय भव : प्रथम देव लोक में देव बने। यहाँ से अपनी आयुष्य पूर्ण कर।

तृतीय भव : चित्रगति नाम के विद्याधर बने यहां से आयुष्य पूर्ण।

चतुर्थ भव : चतुर्थ देव लोक में देव बने वहाँ से अपनी आयुष्य पूर्ण कर

पंचम भव : अपराजित नाम के राजा बने वहां पर अपने पुण्य कर्म करते हुए अपनी आयुष्य पूर्ण होने पर।

छष्ठम् भव : ग्यारह देव लोक में बने वहां पर अपनी आयुष्य पूर्ण होने पर।

सप्तम् भव : शंख नाम के राजा बने।

ये राजा अत्यंत वीर, पराक्रमी थे, साथ–साथ में दयालु भी थे। जब वे राजकुमार थे तब एक बार ऐसी घटना घटित हुई कि उनके राज्य में दस्यु समूह ने आंतक फैलाया। निरपराध पथिकों को लूटना, उनकी हत्या करना, उनका एक व्यवसाय था। उस समय के राजा ने दस्यु को पकड़ने के लिए सेना का आदेश दिया तब राजकुमार शंख ने दस्यु को पकड़ने की जिम्मेदारी ली और अपनी कुशल रणनीति तथा पराक्रम से बिना किसी खून खराबे से दस्यु सरदार को पकड़कर पिता के सम्मुख पेश किया। मार्ग में उनको एक विद्याधर से युद्ध करना पड़ा क्योंकि वह विद्याधर एक सुंदर कन्या यशोमति को अपहरण कर ले जा रहा था और कन्या की करूण–पुकार सुन विद्याधर से युद्ध कर कन्या को छुड़ाया। यशोमति को देखा तो उसका मन प्रेमसिक्त हो गया और यशोपति का शंख के साथ विवाह हो गया।

एक बार शंख ने मुनि भगवत से पूछा कि यशोमति के प्रति मेरे मन में इतना प्रेम क्यों है जिससे वह चाहते हुए भी उसे त्याग कर दीक्षाग्रहण नहीं कर पा रहा हूँ। मुनि ने बताया कि पिछले छः भवों में तुम एक दूसरे पति–पत्नि थे और एक जन्म के बाद

नौंवे जन्म में नेमिनाथ नाम के बाईसवें तीर्थंकर बनोगे और नौवें भव में भी राजमति राजकुमारी भी दीक्षा प्राप्त मोक्ष प्राप्त करेगी। यह जानकर शंख राजा ने अपना राज्य का भार पुत्र को सुपुर्द कर दीक्षा ग्रहण की और अरिहंत की भक्ति,, बीस स्थानक आराधना तप कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। यहां से अपनी आयुष्य पूर्ण की।

अष्ठम् भव : अपराजित नामक विमान में देव बने।

नवम् भव : जम्बूद्वीप के लख क्षेत्र शौरीपुरी (शौर्यपूर) नामक नगरी थी। वहां के राजा का नाम समुद्र विजय था और रानी का नाम शिवा देवी था। अपराजित नामक विमान से अपनी आयुष्य पूर्ण शख का जीव कार्तिक वदि द्वादशी को शिवा देवी रानी के गर्भ में अवतरण हुआ। समय पूर्ण होने पर श्रावण शुक्ला पंचमी को रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। गर्भकाल में शिवादेवी माता ने अरिष्ट रत्नमय चक्रनेमि को देखा इसलिए बालक का नाम ''अरपअनेभि'' रखा गया। भगवान का जन्म हरिवंश कुल में हुआ। इसके पूर्व श्री मुनिसुव्रत भगवान का जन्म भी हरिवंश कुल में हुआ। हरिवंश कुल में सत्यवादीराजा वसु हुए। 1 वर्ष बाद इसी कुल में सौरी नाम का प्रभावी राजा हुआ जिन्होंने सौरीपुर नगर बसाया। सौरी के दो पुत्र थे (1) अंधक वृष्णि (2) भोगवृष्णि। अंधक वृष्णि के दस पुत्र थे – बड़े समुद्रविजय व सबसे छोटे वसुदेव।

वसुदेव के बड़ी रानी रोहिणी के एक पुत्र बलदेव व छोटी रानी देवकी के पुत्र कृष्ण थे। अरिष्ठनेमि यौवनावस्या में पहुंचे भगवान के माता पिता ने उनके विवाह के लिए अनुमति देने को कहते रहे और भगवान योग्य कन्या मिलने का विवाह करने को कहा करते और वे घूमते घूमते श्री कृष्ण की आयुधशाला में पहुंच गए वहां वासुदेव का सुदर्शन चक्र, धनुष, शंख रखा हुआ था। सबको क्रीड़ा की तरह देखते रहे, उठाते रहे क्रीड़ा करते रहे। शंख को उठाकर इस प्रकार से फूंका कि सारी द्वारिका स्तब्ध हो गई। कृष्ण ने आवाज सुनी वे तुरंत दौड़कर आयुधशाला गए, कृष्ण ने सोचा कि किसी आक्रमण की सम्भावना है। वहां जाकर नेमिनाथ के सामर्थ्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गए। दोनों में कौन शक्तिशाली है, परीक्षा के लिए कृष्ण ने अपना हाथ बढ़ाया। श्री नेमिनाथ ने कमल की डंडी की तरह सहजता

से मरोड़ दिया। फिर श्री नेमिनाथ ने अपना हाथ बढ़ाया, उसको मरोड़ते मरोड़ते प्रयास करते हुए वे स्वयं हाथ पर लटक गए फिर भी हाथ झुका भी नहीं सके। श्री नेमिनाथ को इतना पराक्रमी समझ कर कृष्ण चिंतित होने लगे कि कहीं श्री नेमिनाथ मेरा (कृष्ण) राज्य नहीं छिन ले।

उसी समय आकाशवाणी हुई कि श्री नेमिनाथ कुमारावस्था में दीक्षा लेंगे। इसके उपरांत भी कृष्ण आश्वस्त नहीं हुए तो अपनी आठ रानियों को जलक्रीड़ा आदि से वासना ग्रस्त करने का प्रयास किया लेनिक सब निष्फल रहे। श्री नेमिनाथ को विवाह के कई उपायों से सहमति ली गई और सहमति प्राप्त होने पर उग्रसेन राजा की पुत्री श्री राजमति से श्रावण शुक्ल षष्ठी को विवाह करना निश्चय हुआ। और विवाह पर श्री नेमिनाथ को वस्त्र भूषणों से सजाकर रथ में बैठाया और बारात राजा उग्रसेन के यहां प्रस्थान हुई और उनके (उग्रसेन) महल के निकट पहुंचकर राजमति ने नेमिनाथ को देखा तो वे वह अपने आप को धन्य मानने लगी। उसी समय नेमिनाथ ने पिंजरे में रखे हुए हिरण–हिरणी व अन्य पशुओं को देखा तो सारथी को बंद पशुओं के बारे मे पूछा तो जानकारी मिली कि आपके विवाहोपरान्त बाराती व महमानों को इसका भोग कराया जावेगा।

श्री नेमिनाथ ने उसी समय सारथी को वापस घर लौटने का आदेश दिया और रथ घर की ओर मुड़ गया। इस दृश्य को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। माता–पिता ने व अन्यों ने श्री नेमिनाथ को समझाया लेकिन भगवान ने एक ही उत्तर दिया कि जिसका प्रारम्भ ही इस प्रकार हिंसा से भरा हो तो गृहस्थी बसाने का क्या अर्थ है। इधर बारात लौटने का समाचार प्राप्त होते ही राजमति मुर्छित हो गई और अपने जीवन का ग्यारस बनाने के लिए उलाहना देने लगी। उसे मन में नेमिकुमार के अतिष्ठ किसी अन्य को स्वामी नहीं करेगी। श्री नमिनाथ के दीक्षा के अवसर पर राजमति भी वैरागी हो गई। श्री नमिनाथ जन्म से ही ज्ञानत्रथी के स्वामी थे अवधि ज्ञान के आधार पर उन्हें ज्ञात था कि उनकी दीक्षा का समय भी ज्ञात था। श्री नमिनाथ ने एक वर्ष तक सांवत्सरी दान दिया और श्रावण शुक्ला षष्ठि को उत्तरकुरा नामक शिविका पर बैठकर रैवतक उद्यान पर आकर अशोक वृक्ष के नीचे खड़े होकर पंचमुट्ठी लोच कर दीक्षा ग्रहण की। ऐसा प्रतीत होता है कि

विवाह के बहाने, पूर्व भवों के प्रेम से राजमति को मोक्ष के लिए संकेत देने आए थे।

श्री नेमिनाथ ने शरीर आदि से ममता छोड़कर चौपन दिन उत्कृष्ट साधना में रहे। इस अवधि समाप्त होने पर अश्विन वदि अमावस्या को उज्जयंत (गिरनार) पर्वत पर वेलस वृक्ष के नीचे भगवान ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। भगवान के केवलज्ञान प्राप्ति होने के समाचार प्राप्त होते ही कृष्ण वासुदेव राजमतिआदि सभी नागरिक भगवान की देशना सुनने गए। देशना सुनकर कई विरक्त बने हुए वरदत्त आदि दो हजार ने दीक्षा ग्रहण की। राजमति ने दीक्षा ग्रहण की इसके पश्चात् विहार करते हुए पुनः रैवतेक उद्यान में पधारे तब अनेक राजकन्याओं के साथ राजमति ने 400 वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की, इसी समय नेमिनाथ के भाई रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण की। केवल ज्ञान के दो वर्ष पश्चात् चारधाती कर्मों का क्षय कर आषाढ़ शुक्ला अष्ठमी को उज्जयंत पर्वत पर पच्चीस सो छत्तीस साधुओं के साथ एक के उपवास सहित निर्वाण को प्राप्त किया।

श्री नेमिनाथ भगवान की प्राचीनता

श्री नेमिनाथ भगवान की जन्मस्थली शौर्यपुर जो आगरा से 75 किलोमीटर दूर है। श्री नेमिनाथ समुद्रविजय के पुत्र थे। डॉ. फरेर, बरनेट, कर्नल जेम्स टॉड व प्रो. कर्ने, डॉ. रॉय चौधरी तथा अन्य इतिहासकार मानते है कि श्री नेमिनाथ व कृष्ण समकालीन है, चचेरे भाई थे। नेमिनाथ का नाम यर्जर्वेद में नेमिनाथ की दार्शनिकता का वर्णन वैदिक धर्म में आता है। महाभारत का शांति पर्व का उल्लेख नेमिनाथ भगवान के जीवन से है। उदयगिरी (उड़ीसा) का हाथी गुफा में एक शिलालेख में ब्राह्मी, संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषा की एक मूर्ति प्राप्त हुई है उस पर "नमो अरिहंताण" जो 152 वर्ष ई.पू. का महाराजा इवारवेल का बतलाया'

नेमिनाथ का वर्णन प्रभाव पुराण में भी आता है। डॉ. प्राणनाथ विद्यासागर ने एक ताम्बे की चसुंनम गुजरात के कठियावाड़ क्षेत्र में खोजा है जो 605 ई.पू. की है और कुछ इसको 1140 ई. पू. की मानते है। पाषाण की मूर्ति श्री देवगढ़, कुम्भारिया व विमल वसी मंदिर आबू में विद्यमान है। सन् 1230 की लुणावसी जैन मंदिर आबू पर्वत में नेमिनाथ की मूर्ति है। मथुरा कंकाली टीला से कई प्रतिमा जो पहली शताब्दी से 12 वीं शताब्दी की है, लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।

9 भव

1. धनराजा – धनमती
2. सौधर्म देवलोक में दोनों देव
3. चित्रगति विद्याधर – रत्नावती राणी
4. महेन्द्र देवलोक में दोनों देवी
5. अपराजित राजा – प्रियमति राणी
6. आरण देवलोक में दोनों देव
7. सुप्रतिष्ठित राजा – यशोमती राणी
8. अपराजित देवलोक में दोनों देव
9. श्री नेमिनाथ प्रभु – राजीमती

भगवान श्री अरिष्टनेमि जी

जय यादव नंदन, प्रभु जय यादव नंदन।
शरण तिहारी आये, काटो भव बन्धन।।ओम।।
शौरीपुर में जन्मे, शिवा के जाया।प्रभु।
समुद्र विजय कुल दीपक, आनन्द उर छाया।।ओम।।
जन्मत खुशी मनाई, इन्दर इंद्राणी।प्रभु।
मुखड़ा देख प्रभु का, मन में हर्षाणी।।ओम।।
यादव कुल में प्रभुवर, पूर्णशशि सोहे।प्रभु।
अलसी फूल वर्ण हे, सुर नर मन मोहे।।ओम।।
मस्तक मुकुट अनुपम, सोहत है भारी।प्रभु।
तिलक ललाट सुहाना, जाऊं बलिहारी।।ओम।।
दुल्हा बनकर प्रभु जी तोरण पर आवे। प्रभु।।
पशुओं की करूणावश, मोह के छिटकाये।। ओम।।
सहस्त्र पुरूष संग संयम, ले केवल पाये। प्रभु।
चार तीर्थ संस्थापक, प्रभुवर कहलाये।। ओम।।
सहस्त्र अठारह मुनिवर, हे गुण के ग्राही। प्रभु।
चालीस सहस्त्र सतीजी, हुई शासन माही।।ओम।।
अमर अमर पति प्रभु की, निशदिन सेव करे।प्रभु।
वाणी सुन सुन भवियन, जिन कल्याण करे।।ओम।।
रिष्टनेम प्रभु जी को, जो शुद्ध मन ध्यावे।प्रभु।
रोग शोक मिट जावे, सुख सम्पति पावे।।ओम।।
गुरू "हीरालाल" प्रसादे "चौथमल" गावे प्रभु।
शहर उज्जैनी आकर, चौमासा ठावे।।ओम।।

23. श्री पार्श्वनाथ भगवान

बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण के लम्बे अन्तराल पश्चात करीबन 83000 वर्ष बाद श्री पार्श्वनाथ भगवान का अवतरण हुआ इनका जीवन चरित्र का विवरण इस प्रकार है।

भगवान पार्श्वनाथ का वर्तमान में दसवा जीव है। इसके पूर्व भगवान की नव भव पूर्ण किए जो इस प्रकार है :–

प्रथम भव – मरुभूमि का नायक राजपुरोहित पुत्र :

पोतनपुर के अरविंद राजा के राजपुरोहित को दो पुत्र थे (1) कमढ (2) मरुभूमि–कमठ ज्येष्ठ पुत्र था। मरुभूमि शांत, मद्यचारी, करूणामय, दयावान था जबकि कमठ दुराचारी और क्रोधी था। पति की मृत्यु के पश्चात् राजपुरोहित का पद कमठ को मिलने वाला था लेकिन उसके आचरण की दृष्टि से राजपुरोहित का पद मरुभूमि को मिला जिससे कमठ को ईर्ष्या होने लगी। मरुभूमि की अनुपस्थिति में कमठ ने उसकी पत्नि वसुंधरा से प्रेम सम्बंध जोड़ लिया। जिससे उसने राजा से शिकायत की, राजा ने कमठ को प्रताड़ित कर देश निकाला दे दिया।

जिसके फलस्वरूप उसकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी और वह जंगल में जाकर सन्यासी बन गया। अपने भाई कमठ को देश निकाला हो जाने से मरुभूमि को पश्चातप हुआ वह भाई से क्षमा मांगने गया – वह झुककर क्षमा मांग रहा था लेकिन कमठ ने क्रोध ईर्ष्या के कारण एक बड़ा पत्थर उसके सिर पर दे मारा मरुभूमि की तत्काल वहीं पर मृत्यु हो गई।

द्वितीय भव :

मरुभूमि के जीव ने मरकर हाथी के रूप में जन्म लिया। कमढ ने क्रोध और ईर्ष्या के भाव से मरकर सर्प (उड़ने वाला सर्प) योनि में जन्म लिया। एक दिन जंगल में हाथी को मुनि के दर्शन हुए मुनि के उपदेश सुनकर उसको पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ। उसी समय से हाथी ने खाना–पीना

छोड़कर उपवास पर रहने लगा। उपवास के कारण से दुर्बल होकर एक कीचड़ के गड्डे में फंस गया प्रयत्न करने पर भी निकल नहीं सका और दलदल में ही शांत स्वभाव से खड़ा रहा। उसी समय कमठ का जीव सर्प उसी मार्ग पर उड़ता हुआ जा रहा था। हाथी को देखकर पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ और हाथी पर नुकीले दांत से कई वार किए और घायल कर दिया। हाथी अपने स्वभाव के कारण सब सहन करता रहा औरअंत में मृत्यु को प्राप्त की।

तृतीय भव :

शांत व समता भाव से विचार करते हुए हाथी की मृत्यु होने पर वह आठवें सहस्यार नामक देवलोक में देव बना। कमठ का जीव भी अपनी आयुष्य पूर्णकर पांचवी नरम में उत्पन्न हुआ ।

चतुर्थ भव :

आठवें देवलोक से देव अपनी आयुष्य पूर्ण कर पूर्व महाविदेह क्षेत्र में तिलकपुरी नामक नगरी थी उसका राजा विद्युतगति राजा था वह प्रतापी था। समस्त विद्याधरों का राजा था। इस राजा की पत्नि का तिलकामती था। उसके गर्भ के हाथी का जीव देव पूत्र के रूप में उत्पन्न हुआ उसका नाम किरन बेग रखा। युवावस्था होने पर उसका विवाह पद्मावती से हुआ। पिता ने सम्पूर्ण राज्य का भार भी किरणबेग को सुपुर्द कर दीक्षा ग्रहण की। किरण बेग ने राजा का संचालन व्यवस्थित करते हुए क्षमाशील को ध्यान रखते हुए राजा का प्रबन्ध किया करता। प्रजा बहुत सुखी थी।

एक दिन श्री विजयभद्र आचार्य उद्यान में आए। राजा व अन्य जन समूह आचार्य श्री के दर्शन वंदन को गए। आचार्य श्री का प्रवचन सुनकर कई लोगों ने दीक्षा ग्रहण की, श्रावकधर्म ग्रहण किया। राजा रूप ने दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन अर्हत भक्ति में वह त्व साधना में लीन रखते।

इधर कमठ का जीव दुर्दुट सर्प से आयुष्य पूर्ण कर एक विषैला बड़े नाग के रूप में जन्म लिया और मुनि को काऊसग्गीय मुद्रा में तप करते हुए

देखकर कमठ के जीव सर्प ने डंक से डसना चालू किया लेकिन मुनि समता भव से सहन करते रहे। मुनि का जीव अपना आयुष्य पूर्ण कर बारहवें देवलोक में देव बने।

पंचम भव :

इस प्रकार मरुभूमि का जीव मुनि का शरीर त्याग कर बारहवें देवलोक में देव बने।

छठा भव :

जम्बूद्वीप पश्चिम महाविदेह में वज्रवीरा नाम का राजा था उसकी रानी लक्ष्मीवती थी। किरणबेग का जीव देव से अपनी आयुष्य पूर्ण कर लक्ष्मी ती के गर्भ में अवतरित हुआ। बालक के जन्म होने पर उसका नाम ब्रजनाथ रखा। योवनावस्था होने पर विवाह हुआ। पिता ने राज्य का भार ब्रजनाथ को सुपुर्द कर दीक्षा ग्रहण की। वज्रनाथ के एक यथा समय एक पुत्र हुर्आ जिसका चक्रायुध था। कुमार चक्रायुघ बड़ा हुआ। तब ब्रजनाथ को पूर्व जन्म का जाति स्मरण ज्ञान हुआ, उसने विचार किया कि इस जीवन को बेकार ही खराब कर रहा है।

अपना राज्य का भार पुत्र को सुपुर्द कर श्री क्षेमंकर तीर्थंकर के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। अपनी दीक्षा के पश्चात् तप ध्यान में जीवन समर्पण कर दिया। एक दिन रात्रि में मुनि कार्योत्सर्ग करने के लिए काऊसग्ग् मुडा ध्यान में ध्यानमग्न थे—कई जानवरों ने उन पर आक्रमण किया, भूत—प्रेत ने जोरदार अठ्हास किया लेकिन वे विचलित नहीं हुआ। इधन सर्प का जीव मर कर कुरंगक नाम के भील के रूप में जन्म लिया।

कुरगंक भील शिकार करने के लिए इधर—उधर घूमता हुआ जहां मुनि कार्यात्सर्ग क्रिया में ध्यानमग्न थे, आया। पूर्व भव का वैरभाव जागृत हुआ और उसने विवश कर मुनि पर बाण बरसा करना प्रारम्भ कर दिया लेकिन मुनिराज तो अपने समता—भाव और कर्म को भोगना ही चाहिए और दर्द को सहन करते रहे और नवकार—मंत्र का स्मरण करते हुए अनशन (उपवास)

ग्रहण कर अरिहतं शरणं, सिद्धशरणं, साहू शरंण व जिनधर्म शरण कर पंचकल्याण किया और समाधि रूप को प्राप्त हुए ।

सप्तम भव :

बज्रनाथ का जीव (मुनि) की समाधि मरण प्राप्त कर मध्यम ग्रेवेयक में अनंद सागर नामक विमान में देव बने ।

अष्ठम भव :

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र के सुरपुर नामक एक नगर था। इस नगर के राजा का नाम बज्रबाहु था–उसकी रानी का नाम सुदर्शना था। ब्रजनाथ का जीव मध्यम ग्रैवेयक से अपनी आयुष्य पूर्ण कर सुदर्शना रानी के गर्भ मे अवतरण हुआ। समयानुसार पुत्र का जन्म हुआ और नामकरण के दिवस पर उसका नाम सुवर्णबाहु रखा। पुत्र ने योवनावस्था प्राप्त की और सभी प्रकार की विद्या व कला में पारंगत हो गए। इधर ब्रजबाहु को भी वैराग्य आ गया और उसने अपने पुत्र को राज्य सुपुर्द कर दीक्षा ग्रहण की। राजा प्रजा का पालन प्रेमपूर्वक करने लगा। सुवर्णबाहु के राज्य में कभी भी उपद्रव नहीं होता कभी दुष्काल नहीं पड़ा। राज्य के सभी लोग प्रसन्न थे। सुवर्ण बाहु एक चक्रवती राजा बना। उसने चद्रचुड़ राजा की कन्या व अन्य विद्याधरों की कुल 5000 हजार कन्याओं के साथ विवाह किया।

एक दिन जिनेश्वर देव के दर्शन हुए, वह दर्शन करने गया और उनके सम्यक ज्ञान की बात को सुना और मिथ्यात्व सर्वथा त्याजा है। सुवर्णबाहु को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व जन्म के चरित्र धर्म–तप की बाते हुई। उसके समय उन्होंने पंचमुष्टि लोचा कर दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने अर्हत पूजा, सिद्ध की भक्ति, बीस स्थानक की पूजा आदि तप आराधना की।

इधर कमठका जीव कुरंगक भील अपनी आयुष्य पूर्ण कर सिंह के रूप में उत्पन्न हुआ। मुनि को तप आराधना में मग्न देखकर उसको पूर्व भव का ज्ञान हुआ। मुनि पर आक्रमण किया लेकिन लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए और अन्तर्मन से क्षमा किया। शेर के हमले से मुनि ने शरीर त्याग दिया।

नवम् भव :

सुवर्णबाहु का जीव सिंह के आक्रमण से शरीर त्याग पर दसवें प्राणत नामक देवलोक में देव उत्पन्न हुए

दसम् भव :

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में वाराणसी नाम की एक नगरी थी। उस नगरी में इष्वाकु वंश के राजा अश्वसेन राज्य करता था। उनकी रानी का नाम वामा देवी था राजा का यश चारों ओर फैल रहा था वे प्रतापी, सौम्य, निपुण, प्रवीण थे। प्राणत देव लोक से सुवर्णबाहु का जीव अपनी आयुष्य पुर्णकर वापस वामादेवी के गर्भ में वैशाख कृष्ण चतुर्थी को अवतरित हुए समयानुसार पौष कृष्णा दशमी को पुत्र का जन्म हुआ। गर्भकाल में माता वामा देवी ने मेरे (राजा) पार्श्व में चलते हुए नाग को देखा इसलिए पुत्र का नाम पार्श्व कुमार रखा। पार्श्व कुमार बचपन से प्रतापी, विनयशील, क्षमाशील थे।

यहां से पश्चिम दिशा में प्रसैनजित नाम का राजा राज्य करता था उसकी एक पुत्री प्रभावती थी लेकिन कोई उपयुक्त वर नहीं मिला। प्रभावती पार्श्व के प्रति अनुरक्त थी। इधर कालिग देश के राजा यवनराज प्रभावती से पहले तो मन में प्रेम करता था। यवनराज ने प्रसेनजित के राज्य पर चढ़ाई कर दी और कहा कि या तो प्रभावती के साथ उसका विवाह किया जाए या युद्ध करने को तैयार हो जाए। यह समाचार अश्वसेन महाराजा को भिजवा कर सहायता मांगी।

अश्वसेन राजा न्यायप्रिय नीतिसंगत थे। उसने भी प्रसैनजित के लिए सहायता के लिए सैन्य बल की आज्ञा दी। इस पर पार्श्वकुमार ने पिता से स्वीकृति मांगी कि वह युद्ध करने जाएगा। पिता की आज्ञा से वह युद्ध मैदान में गया और यवनराज को कहा कि प्रसैनजित हमारे शरणागत है, उनकी रक्षा के लिए हम युद्ध करने को तैयार हैं। पार्श्वकुमार की सैन्यबल, उसकी बुलन्द आवाज सुनकर यवनराज ने अपने आप को समपिर्त कर युद्ध विराम कर दिया। प्रसैनजित ने अपनी कन्या प्रभावती का विवाह

पार्श्वकुमार से कर दिया। एक दिन नगर की जनता पूजा–अर्चना के लिए बाहर जा रही थी, पता लगा कि कमठ नाम का तापस नगर के बाहर तप कर रहा है। उसके दर्शन के लिए जा रहे है। उनमें जाति स्मरण ज्ञान से पार्श्वकुमार को ज्ञात हो गया कि वह कमठ है जिसने तापस दीक्षा ग्रहण कर ली है।

पार्श्वकुमार भी तापस के तप को देखने अपने अनुचरों के साथ गए। उसको देखकर पार्श्वकुमार ने कहा कि हे तापस आप हिसात्मक यज्ञ व अज्ञान तप में क्यों धकेल रहे हो साथ में यह भी कहा अग्नि कुण्ड में जलती लकड़ी के बीच युगल नाग जल रहे हें कमठ ने बोला कि आप यज्ञ, धर्मतप को क्या जाने। हमारे यज्ञ में क्यों विघ्न डाल रहे हो पार्श्वकुमार ने अनुचरों को आज्ञा देकर जलती लकड़ी को अग्नि कुण्ड से निकाली और धीरे से लकड़ी को चीरी तो उसमें से तड़पते हुए नाग युगल निकले। पार्श्वकुमार ने उनको णमोकार मंत्र का श्रवण कराया। वे णमोकार मंत्र श्रवण करते हुए धरणेन्द्र पद्मावती नाम के देव व देवी बने। इस प्रसंग से कमठ की प्रतिष्ठा कम हुई, वह अज्ञान तप करता रहा। मरकर असुर कुमारों में मेघमाली बना। इस घटना से पार्श्वकुमार के मन में नई दिशा जागृत हुई। अज्ञान व पाखण्ड के चक्कर में पड़ी भोली जनता को धर्म का सच्चा मार्ग दिखाने के विचार से वे संसार को छोड़कर दीक्षा लेने के लिए उद्यान में भ्रमण करने गए वहां नेमिनाथ भगवान के विवाह, वैराग्य के चित्रों को देखकर शीघ्र दीक्षा लेने को तत्पर हो गए और वर्षीदान देकर पौष कृष्णा एकादशी को अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ग्रहण की।

एक दिन पार्श्वनाथ भगवान वन में ध्यानस्थ खड़े थे उस समय धरणेन्द्र देव भगवान को वंदन करने आए। भगवान के उपर तेज धूप को देखकर नागफलों का एक छत्र बनाया। इसी प्रकार एक दिन भगवान पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग करके खड़े थे। उस समय मेघमाली उधर से निकला। प्रभु से ध्यानस्थ देव पूर्ण भव का वैर जागृत हो जाने भगवान को तप से विचलित करने के लिए शेर, हाथी, चीता, दृष्टि विष सर्प, बैताल आदि रूप बनाकर

ध्यान भय करने का प्रयास किए लेकिन भगवान के ध्यान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब मेघमाली ने क्रोध होकर मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ की और भगवान की गर्दन तक पानी आ गया तब धरणेन्द्र के सिंहासन का अहसास हुआ वे तत्काल पद्मावती के साथ प्रभु की सेवा के लिए पहुँचे। धरणेन्द्र देव ने सात फणों का छत्र बनाया और शरीर की कुण्डली बनाकर कमलासन बनाकर भगवान को अष्ट कर किया। धरणेन्द्र ने मेघमाली तो भगवान से क्षमायाना कर चले गए।

इस प्रकार भगवान 83 दिन छद्मस्थ के रूप में व्यतीत कर पुनः वाराणसी उद्यान में आकर धातकी वृक्ष के नीचे आकर ध्यानस्थ होकर चैत्र कृष्णा चतुर्थी को भगवान को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान ने अपनी देशना में हिंसा त्याग, चौर्य त्याग, परिग्रह त्याग, असत्य त्याग के रूप में चर्तुयाम में धर्म की समापन की। भगवान की देशना सुनकर पिता अश्वसेन, माता वामा देवी रानी प्रभावती आदि को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। 70 वर्ष तक संयम मय जीवन पूर्ण कर अपनाअंतिम समय जानकर सम्मेत शिखर पर्वत पर गए श्रावण शुक्ला पंचमी को निर्वाण सिधारे।

विशेषता :

श्री पार्श्वनाथ भगवान के शासनकाल की एक विशेष घटना का उल्लेख जैन सूत्रों में आता है कि उनके शासन में 206 वृद्ध अविवाहित कुमारियों की दीक्षा। भिन्न–भिन्न नगरों में रहने वाली वृद्धावस्था होने पर कुल 206 कन्याओं ने दीक्षा ग्रहण की और तप आराधना की लेकिन कुछ मुणों में दोष होने के कारण उनकी आलोचना पूर्ण किए बिना ही आयुष्य पूर्ण कर उनमेकं से चमरेन्द्र, बलींद्र, ध्यतंरदेव की मुख्य रानिया बनी।

श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीनता :

श्री पार्श्वनाथ की जन्मस्थली व जीवनी के बोर में पूर्णतया सिद्ध हो चुका है। वे एक ऐतिहासिक पुरूष थे। पार्श्वनाथ कीपरंपरा के चार आयाम् (चतुर्याम् धर्म) का पालन किया। वैदिक ऋषि अंगीरस छांदोग्य उपनिषद

03/10/46 में उल्लेख किया है कि महावीर के पूर्व अहिंसा, सत्य, तप, जैन का आध्यातमक पूजा ही सर्वोच्च था। ऐसी मान्यता है कि पार्श्व की मान्यता महावीर के सिद्धांतो में समावेश हो गए, ऐसा नहीं है। उपकेश गच्छ की पट्टावली जो 14 वीं शताब्दी के अनुसार कक्कसुरी जो पार्श्वनाथ की सफलता का अंग रहे। यही 20 वीं शताब्दी (1897–1943) तक मुनि ज्ञानसुंदर जी तक चलती रही। मुनि ज्ञान सुंदर जी ने अपनीपुस्तक पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास में स्पष्ट किया है। इसके पूर्व आचार्य रत्नप्रभ सूरि जी ने ई.पू. 15 वीं शताब्दी में स्पष्ट किया है। पार्श्व के बारे में थेकशा था। (42वी शताब्दी ई.पू.) ऋषिाषित पुरूष शालाका चरित्र में उल्लेख है। पार्श्वनाथ की कई मूर्तियां मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त हुई जो कुसन स. 58 (पहली शताब्दी) की है, वे लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। उदयगिरि पहाड़ी की हासी गुफा में पार्श्वनाथ भगवान की जीवनी उत्कीर्ण है।

भगवान श्री पार्श्वनाथ जी

ओम पार्श्व परमेश्वर ,स्वामीपार्श्व परमेश्वर।
अश्वसेन के नन्दन, वामा सुत सुंदर।।ओम।।
दसम स्वर्ग से आये, बणारसी अन्दर।स्वामी।
पौष दशम दिन जन्मे, हर्षानन्द घर घर।।ओम।।
नील वर्ण अहि लक्षण, शौभे चरणों पर ।स्वामी।
अद्भूत छटा निरखाते, मोहित हो सुर नर ।।ओम।।
कमठ मान कर खण्डन, अभय दान देकर।स्वामी।
नागिन को पद्मावती, नाग को धरणेन्दर।।ओम।।
संयम ले पूर्ण ज्ञानी हो, विचरे गाम नगर।स्वामी।
वाणी सुन सुन भवि जन, तिरते भव सागर।।ओम।।
पार्श्व नामे व्याधि विनसे, होवे दिव्य नजर।स्वामी।
"चौथमल" के वांछित, सुख सम्पद कर।

24. श्री महावीर भगवान

भगवान महावीर के परोपकारी व प्रकाशमय जीवन पर प्रकाश डालने के लिये कई विद्वान, इतिहासकारों ने विचार प्रकट किये, पुस्तक प्रकाशित हुई इसलिए विस्तृत जीवनी न देकर केवल संक्षिप्त जानकारी साधारण भाषा में देने का प्रयास कर रहा हूं आशा है पाठकगण को अच्छा लगेगा।

पार्श्वनाथ परम्परा के केशी श्रमण काफी प्रतिभाशाली विद्वान आचार्य हुए जिन्होंने जैन धर्म का प्रचार करने में बहुत बडा योगदान दिया। इस योगदान के साथ–साथ यज्ञवादियों द्वारा बढ़ता हुआ प्रभाव क्रूरता को रोकने का महत्वपूर्ण कार्य करते हुए इस यज्ञ से होने वाली हिंसा से बचने व कर्मबंध से मुक्ति पाने के महत्व को बताया जिससे कई राजाओं को व जनता को जैन धर्म की ओर आकर्षित किया और जैनी बनाया फिर भी जो प्रगति होनी चाहिये थी वह नहीं हो सकी।

ऐसे समय भगवान महावीर उनके पूर्व के भव श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार 27 भव दिगम्बर मान्यता के अनुसार 31 भव को पार करते हुए अवतरित हुए।

महावीर के 27 भव निम्न हुए हैं :–

पहला भव – पश्चिम महाविदेह के नयसार ग्राम पति

दूसरा भव – प्रथम देवलोक में देव

तीसरा भव – भरत चक्रवती का तीसरा पुत्र मरीचि

चौथा भव – पांचवे देवलोक में देव

पांचवा भव – कोल्लाक गांव में कौशिक नाम का ब्राह्मण

छठा भव – स्थूणानगरी में पुष्प नाम का ब्राह्मण

सातवा भव – सौधर्म देवलोक में देव

आठवा भव – अग्निद्योत नामक ब्राह्मण और अन्त मेंत्रिदण्डीबना

नौवा भव – ईशान देव लोक में देव

दसवां भव – मंदर नामक गांव में अग्निभूत नामक ब्राह्मण

ग्यारहवा भव – सनतकुमार देव लोक में देव

बारहवां भव – श्वेतांबी नगरी में भारद्वाज नामक ब्राह्मण

तेरहवा भव – माहेन्द्र देवलोक में देव

चौदहवां भव – राजगृह नगर में स्थावर नामक ब्राह्मण

पंद्रहवा भव – ब्रह्मदेव लोक में देव

सोलहवां भव – राजगृह नगर में विश्वभूमि नामक राजकुमार

सत्रहवां भव – महाशुक्र देवलोक में देव

अठारहवां भव – पोतनपुर नगर में प्रजापति राजा का पुत्र त्रिपुष्ठ नामक वासुदेव

उन्नीसवा भव – सातवी नरक में नारकी बीसवां भव – सिंह

ईक्कीसवा भव – चौथी नरक में नारकी

बाईसवा भव – मानव जीवन

तैईसवा भव – विदेहक्षेत्र में धनंजय राजा के घर प्रियमित्र नामक चक्रवती राजा

चौबीसवा भव – महाशुक्र देवलोक में देव

पच्चीसवा भव – स्थिति धारक देव

छब्बीसवा भव – दसवे देवलोक में देव

सताईसवा भव – देवनंदा ब्राह्मणी के गर्भ में थे अब ब्राह्मण कुण्डपुर नामक ग्राम के ब्राह्मण ऋषभदास की पत्नी देवनंदा की कुक्षी में च्यवन हुआ।

इधर वैशाली के गणपति का राजा चेटक जिसकी पुत्री त्रिशला थी।

त्रिशला का विवाह कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ।

26 भव पूर्ण होने के बाद जब महावीर देवानंदा की कुक्षी में ई.पू. 598 आषाढ सुदि 6 को च्यवन हुआ लेकिन इन्द्रों का आचार यह है कि अरिहंत हीन कुल में अवतरित नहीं होते। अतः में अवर्तीण अरिहंत के जीव को उठाकर क्षत्रियकुण्ड ग्राम ऋषभदेव कुल के वंशज सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला की कुक्षी में संहरण करा दिया जाए क्यों कि अरिहंत कभी भी हीनकुल में जन्म नहीं लेते इस विचार से इन्द्र ने मेषी देव को आज्ञा दी। इन्द्र से आदेश प्राप्त होते ही हरिणेगमेषी देव ने सावधानीपूर्वक देवानंदा के गर्भ का संहरण कर त्रिंशला के गर्भ में अश्विन कृष्णा 13 को स्थापित कर दिया। (उल्लेख आचारंग सूत्र समवायांग, स्थानांग सूत्र व इसके आवश्यक) गर्भाहरण को लेकर संदेह से देखा जाता है। यहां स्पष्ट है कि वर्तमान युग में भी यह व्यवस्था है।

वैज्ञानिकों ने अनेक स्तर पर यह परीक्षण किया है और सिद्ध किया कि गर्भ अपरिवर्तन असंभव नहीं है। एक अमेरिकन डॉक्टर को एक भाटिया महिला के पेट का ऑपरेशन करना था समस्या यह थी की वह स्त्री गर्भवती थी अतः डॉक्टर ने एक गर्भवती बकरी के पेट को चीर कर उसके पेट का बच्चा बिजली चालित एक डिब्बे में रखा और उस डिब्बे को स्त्री के पेट में रख दिया। कालान्तर में स्त्री व बकरी ने जिन बच्चों को न्म दिया वे स्वस्थ व स्वाभाविक थे।

इस प्रकार देवानंदा को अर्धनिद्रा में 14 स्वप्न वापस जाते हुए दिखे और रानी त्रिशला को चौदह स्वप्न दिखाई दिये। स्वप्न के परिणाम जानकर राजा सिद्धार्थ रानी त्रिशला प्रसन्नता से झूम उठे। समय व्यतीत होता गया और समय के अनुसार चैत्र शुक्ला 13 को महावीर का जन्म हुआ। जन्म होने पर इन्द्र लोक, देवलोक व सांसारिक लोक में विधिविधान द्वारा जन्म कल्याणक, दिवस हर्षोल्लास के साथ आयोजित किया गया। नामाकरण करने पर बालक का नाम वर्धमान रखा गया।

वर्धमान जन्म से ही बलशाली वीर, निर्भय व धीर थे। क्षुधा, तृष्णा, सिद्धान्त को समझते थे ओर प्रत्येक उपसर्ग को सहन करते थे वे राग, द्वेष के विजेता थे। पराक्रमी होने के कारण परीक्षा लेने पर सिद्ध हुए। इसलिये वे महावीर कहलाने लगे। महावीर का जन्म वैशाली क्षेत्र में हुआ इसके लिये विभिन्न सम्प्रदाय में भिन्न–भिन्न मान्यता है लेकिन शोध के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि वैशाली के पास उपलब्ध खण्डहर के पास ही वासु कुण्ड नामक एक गांव है वहां पर जमीन के एक भाग पर वहां के लोग सदियों से प्रचलित परम्परा के अनुसार हल नहीं चलाते है। कहा जाता है कि यह भूमि पवित्र है पूजनीय है तथा महावीर की जन्म स्थली है, यह भूमि क्षत्रीय कुण्ड में आती है। क्षत्रीय कुण्ड वैशाली जिले के हाजीपुर नगर से 30 कि.मी. दूर है।

जब महावीर की उम्र 8 वर्ष की हुई तो माता–पिता ने स्नेह वश पुत्र प्रेम के कारण भी पाठशाला भेजने का निर्णय किया। शिक्षक अपने आपको धन्य मान रहा था कि कुमार वर्धमान उसके पाठशाला में अध्ययन के लिये आयेंग। इस बात का ज्ञान जब इन्द्र को हुआ तो ब्राह्मण बनकर वहां पर पहुंचा और शिक्षक के मन में जो शंका थी, वही प्रश्न वर्धमान को पूछे तो उन्होंने सहजभाव से सबके उत्तर सही दिये और शिक्षक की शंकाए भी दूर हो गई। बालक में इतना ज्ञान देखकर उनके चेहरे पर जो गम्भीरता, नम्रता, विनय के भाव देखा तो शिक्षक ने राजा से निवेदन किया कि वह बालक साधारण बालक नहीं है।

योवनावस्था होने पर माता पिता ने स्नेहवश उनका विवाह नरवर्य राजा की पुत्री यशोदा के साथ कराया, वैवाहिक जीवन का पालन करते हुए उनके पुत्री हुई जिसका नाम प्रियदर्शना था (दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार महावीर अविवाहित थे) महावीर का परिवार इस प्रकार है :–

(1) सिद्धार्थ त्रिशला (पिता–माता) (2) सुपार्श्व (चाचा) (3) नन्दीवर्धन (भ्राता) (4) सुदर्शना (बहिन) (5) यशोदा (पत्नी) (6) प्रियदर्शना (पुत्री)

महावीर ने उनके गर्भ में रहने की अवस्था में ही माता के दर्द को पहचाना

था इसलिए उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली थी कि माता–पिता के रहते हुए वे संयम ग्रहण नहीं करेंगे।

महावीर जब 28 वर्ष के हुए, माता–पिता का दवेलोक हो गया तो उन्होंने अपने बडे भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा चाही तो बडे भाई ने कहा कि अभी माता पिता का शोक भी पूरा नहीं हुआ, अभी दो वर्ष ठहर जाओ। महावीर भी बड़े भाई के भत्तिपूर्ण व्यवहार को टाल न सके और उन्होंने यह निश्चय कर लिया इन दो वर्षों के लिये वे अचित आहार ही लेंगे। दो वर्षों के उपरान्त महावीर ने भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा चाही और दीक्षा की तैयारी की जाने लगी। वहदिन भी आया जब महावीर का दीक्षा वरघोडा निकला और वरघोडा ज्ञातखण्ड उद्यान में पहुंचा अशोक वृक्ष के नीचे आपने शरीर से समस्त जेवर निकाल दिये और मिग्सर वदि 10 को पंचमुष्टि केशलोच किया और साधु जीवन स्वीकार कर लिया। इनके कोई दीक्षा गुरू नहीं थे। वे स्वयं बुद्ध थे।

नन्दीवर्धन व सभी स्वजनों की आज्ञा लेकर व वहाँ से विहार कर गये। वे ग्राम से ग्राम विहार करते हुए 12 वर्ष तक वे अभिग्रह, तप, साधना में रहे। उनके संयम जीवन के 42 वर्ष के जीवन काल में गम्भीर, क्षमाशील, सहनशील, दयावान, मैत्रीभाव से रहे। उनका जीवन केवल तप साधना में रहा। इनके इन गुणों का वर्णन इन्द्रसभा में भी किया गया और यह भी उल्लेखित है कि उनके ध्यान में कोई भग नहीं कर सकता। इस बात को संगमदेव ने विचार किया कि उनके ध्यानावस्था में उपसर्ग उत्पन्न कर अवश्य साधना भंग कर इन्द्र के कथन को झूठ सिद्ध करेंगे। संगम देव ने एक ही रात्रि में निम्न 20 उपसर्ग उत्पन्न किये और महावीर की साधना को भंग करने का प्रयास किया। लेकिन सफल नहीं हुआ।

1) धूल वर्षा की जिससे भगवान के मुंह, नाक, आँखों में मिट्टी के कण जाकर श्वांस को रोगे।
2) कठोर मुखवाली चिटिंयाँ भगवान के शरीर पर छोड़ी।

3) भयंकर डंक वाले मच्छर भगवान पर छोड़े।
4) तीखे मुंह वाली छीमेल शरीर पर छोडी, वह चिपक गई।
5) अग्निकणों के डंक प्रभु को मारे।
6) नेवलों को भगवान के शरीर पर छोड़े
7) भंयकर नाग को शरीर पर छोड़े।
8) मदमस्त हाथियों को भगवान पर प्रहार करने के लिए छोड़े।
9) मूषक सेन्य द्वारा भगवान पर हमला।
10) हाथियों ने तीखे दांतों से भगवान पर प्रहार किये।
11) राक्षस द्वारा भयंकर अट्टास करके भगवान को भयभीत करने लगा।
12) व्याघ्रों द्वारा अपने तीव्र नाखूनों द्वारा प्रहार करना।
13) राजा सिद्धार्थ व रानी त्रिशला को विलाप करते दिखाया।
14) भगवान के दोनो पैर के बीच अग्नि लगाकर चावल पकाए जिससे भगवान के पांव जल गए।
15) संगम ने चाण्डाल बनकर भगवान के गले, कानो, दोनों भुजाओं व जंघादि अवयवों पर तीखी चोंच वाली पक्षी के पिंजरे लगा दिये।
16) तीव्रगति के पवन से भगवान को ऊपर उठाकर पृथ्वी पर गिराना, यह क्रम कई बार किया।
17) चक्रवर पवन ने चक्र के समान भगवान को गोल गोल घुमाया।
18) बहुत भारी भरकम भार वाला पर्वत भगवान पर गिराया।
19) रात्रि शेष होने पर प्रभात बनाकर भगवान को निवेदन किया प्रभात हो गया है, ध्यान भंग हो जाये लेकिन ऐसा हुआ नहीं।
20) कामुक भाव से सुन्दर देवांगना बनकर भगवान को विचलित करने का प्रयास किया।

उपसर्गों के अतिरिक्त 3 उत्कृष्ट उपसर्ग भी हुए जैसे –

1) जब भगवान के कानों में किले डाले गये।
2) जब चण्डकोशिक नाग द्वारा काटा जाना।
3) उपवास के पारणे के दिन संगम देव द्वारा गोचरी को दोषायुक्त बना देने पर वे पुनः लौट गए।
4) महावीर के कानों में कीलें होने से उनकी पीड़ा को समझ कर उचित औषधि के साथ वैद्य ने कील को निकाला तो पीड़ा के कारण भगवान के मुंह से भयंकर चीख निकली। इतनी पीड़ा होने पर भी दया भाव ही रहे।

भगवान ने अपने पारणे के लिये एक कठोर अभिग्रह लिया जो इस प्रकार था कि कोई भी राजकुमारी जिसका सिर मुण्डा (केश रहित) होगा पाँव में बेड़िया होगी, हाथ में उड़द के बाकुल रखा हुआ सूपड़ा होगा व अठ्ठम किये हुए हो तथा आँखों में आँसू होंगे। उसी से वह गोचरी वोहरेंगे। महावीर की तपस्या उपवास के 5 माह 24 दिन व्यतीत हुए, गोचरी उपलब्ध नहीं हुई। पांच माह 25 वें दिन चन्दनबाला जो अपना तीन दिन का उपवास के पारणे करने के पूर्व यह विचारमग्न थी कि कोई साधु आवे तो उनको पहले वोहरा कर पारणा करेंगी। जब महावीर गोचरी के लिये आए तो सब कुछ सही था लेकिन आँखो में आँसू नहीं थे वे पुनः लौटने लगे तो चन्दनबाला के आँखो में आँसू बह निकले ऐसी परिस्थिति में महावीर का अभिग्रह पूर्ण हुआ और गोचरी ग्रहण की।

सारांश यह है कि इतना कठोर अभिग्रह सहनशीलता मैत्री भाव पालने वाले महान तीर्थंकर के कुल 4497 दिन में से 4149 दिन तपस्या में थे व पारणा के दिन 349 रहे। इस तपस्या में 6 मासी, 5 मासी, चार मासी, ढाई मासी, द्विमासी, डेढ मासी, मासक्षमण, पाक्षिक, अठ्ठमू छठ्ठमू सम्मिलित है। 12 वर्षों से अधिक उपसर्गों में ही व्यतीत हुए। (यह चन्दनबाला का चरित्र

पृथक से उल्लेख किया जावेगा।)

इस प्रकार महावीर कड़ी साधना करते हुए व उपसर्गों को सहन करते हुए सभी के प्रति प्रेम, मैत्री, दया, भाव दिखाते चल रहे थे, किसी के प्रति कोई द्वेषभाव नहीं था। समय आया कि ऋझिका गांव के निकट ऋजकुला नदी के किनारे साल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर साधना में थे तो उनके चेहरे पर ज्ञान की ज्योति जल रही थी अर्थात् ई.पू. 557 का वैशाख शुक्ला 10 को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और जन कल्याण की ओर चल पड़े।

केवल ज्ञान के बाद उनकी सभा में योग्य पात्र नहीं होने के कारण प्रथम देशना विफल हुई उनका प्रथम उपदेश तब आरंभ हुआ जब इन्द्रभूति गौतम उनकी सभा में उपस्थित हुआ।

महावीर ने समाज के उत्थान, हिंसा, अहिंसा विवेक पर अपनी व्याख्या दी।

श्री महावीर भगवान की संक्षिप्त जानकारी

संघण	–	वज्रऋषभनाराच
संस्थान	–	समचतुस्त्र
वर्ण	–	पीला
देह (काया)	–	सात हाथ
दीक्षा	–	एकाकी ग्रहण की
प्रथम पारणा	–	खीर से (पात्र में)
केवलज्ञान आसन	–	गोदोहिका
मोक्षप्राप्ति आसन	–	पद्मासन
गौत्र	–	काश्यप
लंछन	–	सिंह
मोक्षगमन	–	एकाकी
अंतिम देशना	–	16 प्रहर का

उपसर्ग करने वाले	–	देव, मनुष्य, तिर्यंच
गर्भहरण करने वाला	–	हरिणैगमेवी देव
दीक्षा शिबिका नाम	–	चन्द्रप्रभा
देवदुष्य	–	1 वर्ष 1 महिने से अधिक रहा
कुल	–	इक्ष्वांकु

1. च्यवनकल्याणक –
   आषाढ़ सुद – 6–ब्राह्मण कुंड ग्रामनगर
2. जन्मकल्याणक –
   चैत्र सुद – 13 – क्षत्रियकुंड ग्रामनगर
3. दीक्षा कल्याणक –
   कार्तिकवद – 10 – क्षत्रिकुड ग्रामनगर
4. केवलज्ञान कल्याणक –
   वैशाख सुद–10 – ;जुवालिका नदी के किनारे शालवृक्ष
5. निर्वाण कल्याणक – दिवाली पावापुरी

श्री महावीर भगवान की उग्र तपस्याओं का विवरण

तप का नाम	कितनी बार	दिन संख्या	पारणा
छह मासी	1	18	1
पांच महिना 25 दिवस	1	9	1
चोमासी	9	1080	9
त्रण मासी	2	180	2
अढ़ी मासी		150	2
बे मासी	6	360	6
दोढ़ मासी	2	90	2
मासक्षमण	12	360	12

पन्द्रह दिन	72	1080	72
प्रतिमा अट्ठम तप	12	36	12
छट्ठ तप	229	458	228
भद्र प्रतिमा	1	2	1
महाभद्र प्रतिमा	1	4	1
सर्वतोभदे प्रतिमा	1	10	1
			4165350

श्री महावीर भगवान के गणधर

क्र.सं.	शंका	शिष्य	आयुष्य
1. इन्द्रभूति	आत्मा है या नहीं ?	500	92
2. अग्निभूति	कर्म है या नही ?	500	74
3. वायुभूति	जीव और शरीर भिन्न है या अभिन्त	500	70
4. व्यक्त	पंचभूत है या नहीं ?	500	80
5. सुधर्मा	जीव जैसा यहां पर होता है वैसा ही परभव में ही होता है ?	500	100
6. मंडित	कर्म बंध–मोक्ष है या नहीं?	350	83
7. मौर्य पुत्र	देव है या नहीं ?	350	95
8. अकम्पित	नरक है या नहीं ?	300	78
9. अचलभ्राता	पाप–पुण्य है या नहीं ?	30	72
10. मोतार्य	परलोक है या नहीं ?	300	66
11. प्रभास	मोक्ष है या नहीं ?	300	40

अन्य सभी जानकारी, उत्कीर्ण शिलालेखों आदि का वर्णन पूर्व के अंकों में किया गया है।

श्री महावीर भगवान की प्राचीनता

श्री महावीर भगवान की जन्म स्थली कुण्डलपुर है। महावीर के बारे में जैन के विभिन्न आगम में तो उल्लेख है लेकिन बुद्ध की थेरगाथा अट्ठकथा व महावग्ग जो ई.पू. की 5 वीं शताब्दी की है उसमें महावीर को निर्ग्रन्थ कहा है और इसमें महावीर के जीवन का वर्णन भी है। इसी प्रकार 4 वीं शताब्दी की ऋषिभाषित में भी महावीर के जीवन के बारे में उल्लेख किया है महावीर ने भी पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म को तो माना लेकिन उन्होंने पांचवे ब्रह्मचर्य के आयाम को जोड़ा। भारतीय संविधान की हस्तलिखित प्रति के मुख पृष्ठ पर भगवान महावीर का चित्र है।

महावीर की जीवन्त मूर्ति जो आकोला में ई.पू. 5 वीं शताब्दी में प्राप्त हुई है, वह बड़ोदा के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार राजस्थान के बड़ाली ग्राम से महावीर के मोक्ष के 84 वर्ष बाद की मूर्ति प्राप्त हुई वह अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है पहली शताब्दी की मूर्तिया मथुरा कंकाली टीला से प्राप्त हुई।

भगवान श्री महावीर स्वामी जी

जिन जयकार करे, स्वामी जिन जयकार करे।
वर्द्धमान गुण प्रकटे, जो जन ध्यान धरे।।ओम।।
कुण्डलपुर सिद्धार्थ, त्रिशला सुत प्यारे।स्वामी।
जन्मे वीर जिनेश्वर, सुर सेवा सारे।।ओम।।
कंचन वर्ण अनुपम, शुभ सुन्दर काया।स्वामी।
निरखत नैनन हारे, शार्दूल चिह्न पाया।।ओम।।
वैभव विश्व का भोगी, बन पूरण ज्ञानी।स्वामी।
सत्य धर्म समझाकर, तारे भव्य प्राणी।।ओम।।
सती पति सुत माता को, गज भूधर सुमरे।स्वामी।
मैं गौतम गुरू सुमरूं, वांछित काज सरे।।ओम।
"चौथमल" श्रद्धायुत, जो शुद्ध मन ध्यावे।स्वामी।
रिद्धि सिद्धि हो वृद्धि सब सुख यश पाव।।ओम।।

नोट : उपरोक्त सभी तीर्थंकर स्तुतियों के रचयिता मेवाड़ी जैन संत पूज्य श्री चौथमल जी म.सा. थे ।

श्री महावीर की शिक्षाएँ

भारतीय संस्कृति और सभ्यता को समृद्धिशाली बनाने में मुख्य स्त्रोत जेन धर्म है। महावीर के दिये गये सिद्धांत–समात, अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांतवाद, ब्रह्मचर्य, सत्य से ही विश्व शांति संभव है। लेकिन इन सिद्धांतों का पालन करने में मनुष्य को दया, मोह, माया, ममता, अहंकार, ईर्ष्या स्वाथ त्याग करना पड़ता है।

महावीर के जन्म के समय में देश में अशांति, अनीति, पशु बलि, हिंसा का बोल बाला था, उसको भी महावीर ने अहिंसा, मोह, दया, मैत्री भाव से कम किया, उसी प्रकार वर्तमान में आज भी देश में अशांति, अनीति, भ्रष्टाचार, आंतकवाद, अत्याचार, लूटपाद बढता जा रहा है।

यदि देखा जाए तो महावीर के सिद्धांत क्षमा, दया मैत्री, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, अनेकांतवाद द्वारा ही विश्व की समस्या सुलझाने के साथ साथ अहिंसा के माध्यम से देश विदेश का कल्याण हो सकता है।

महावीर ने आत्मा परमात्मा के संबंध में तथा वर्तमान जगत के स्वरूप की वास्तविकता को बताया कि मनुष्य अपना मार्ग स्वयं करें। महावीर ने जो प्रमुख बाते बताई जिसमें सामाजिक, पर्यावरण अहिंसा, वैज्ञानिकता आदि सभी सम्पूर्ण विकास के लिए व लोक कल्याण के लिए सम्मिलित कही गई है। महावीर ने कहा कि कोई भी कार्य करों वह निर्णय के लिये, लक्ष्य की प्राप्ति केलिये, स्वयं के आत्मशोधन के लिये करना चाहिए। इसका संबंध सम्पूर्ण समाज से है। महावीर की मुख्य बाते निम्न प्रकार है :

1) **समता** – महावीर ने बताया कि मनुष्य आपस में भेदभाव, ऊंचनीच, छूआछुत, लिंग भेद, हिंसा मयी है। महावीर ने उपेक्षित लोगों के साधना मार्ग का उपेश दिया। जिसके कारण लोगों में एकरूपता का भाव जागृत हो, किसी प्रकार का भेदभाव न हो तथा मैत्री भाव से रहे।

महावीर भलीभांति जानते थे कि भविष्य के आर्थिक युग में शोषण वृति रोकने के लिए अपरिग्रह की अवधारणा को समझाया है। अनुचित संग्रही

को रोकने की बात कही है। जो मनुष्य इन बातों को नहीं समझते उन्हीं मनुष्य में आपसी मनमुटाव मतभेद होता है। इसी से समाज में विघटन होना संभव है।

2) **अहिंसा** – अहिंसा के बारे में महावीर ने यह स्पष्ट किया कि जीवों के प्रति मैत्रीभाव, दया भाव रखना चाहिये। उनको माना नहीं चाहिये, उनके साथ अनुचित व्यव्हार नहीं करना चाहिये। उन्होंने कहा कि आत्मा का कोई भेद नहीं होता और किसी भी जीव की आत्मा में कोई भेद नहीं होता।

महावीर ने साधु के आचरण के लिए अपनी व्याख्या दी है और श्रावक के लिए भी अहिंसा के अवधारण्या प्रस्तुत की जिसमें कोइ भी व्यक्ति जो मन वचन काया से सभी प्रकार के जीव के प्रति घात नहीं करता हो, न करवाता है ओर न ही दूसरों द्वारा की गई हिंसा का अनुमोदन करता हो, किसी भी प्रकार से दूसरों के प्रति बैर भाव नहीं रखता हो। अपने स्वार्थ के लिए कोई हिंसा नहीं करता है व करवाता हो। अहिंसा के मार्ग पर चलने पर मनुष्य के सदगी से पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये।

3) **सत्य** – कोई मनुष्य किसी प्रकार की हिंसा से वचन नहीं बोलता है, किसी के प्रति कठोर वचन नहीं बोलता है, किसी के प्रति कठोर वचन नहीं बोलते हुए अन्य के लिए हमेशा हितकारी वचन बोलता है। सत्य वचन कर ही परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सफलता मिल सकती है। सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है।

4) **चौय वृति** – (चोरी करना) कोई भी मनुष्य किसी भी व्यक्ति द्वारा खोए हुए, लावारिस या अन्य के सामान को ग्रहण न करना ही आचौय कहलाता है। इसी प्रकार चोरी का सामान रखना, रिश्वत लेना, नापतोल में हेरफेर करना, तस्करी करन, किसी की मूल्यवाद वस्तु को धोखे से कम दाम में ले लेना आदि भी चौर्यवृति कहलाती है। इसी प्रकार अन्य का सामान अपना बना लेना भी चौर्य है। इस आधार पर क्या हमने कभी सोचा है कि शरीर भी हमारा नहीं है क्योंकि शरीर व आत्मा अलग अलग

है। सर्व प्रथम शरीर के ऊपरी आवरण को हटाना चाहिये।

5) **ब्रह्मचर्य** – जो प्रकरण अपनी विवाहित पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री से देह संबंध नहीं रखता है तथा अन्य महिलाओं को मां बहिन के समान समझता है तथा इसी तरह कोई स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरूष से देह संबंध नहीं रखती, अन्य पुरूष भाई तथा पिता समान समझती है, वह ब्रह्मचर्य है।

6) **अपरिग्रह** – महावीर ने मनुष्य की मनोवृति पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि मनुष्य की भावना यह रहती है उसका आधिपत्य या अधिकार हो तथा अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह करने की प्रवृति से अधिकार की भावना तथा अहंकार कीभावना आती है। यदि इसके विपरीत अपने आवश्यकता से अधिक वस्तु रखने की प्रवृति त्याग देता है तो अपरिग्रह कहलाता है।

7) **अनेकांतवाद** – महावीर के तत्व ज्ञान व ज्ञानात्पद को अनेकांतवाद के रूप में बताया है। उन्होंने तत्व विज्ञान का आधार अनेकांतवाद कहा है कि जिसके आधार पर प्रत्येक जीव अनेक शक्ति से भरा हुआ है जिससे सभी ग्रहस्थ के कार्य, वायुयान, जलयान चलाने कीशक्ति विद्यमान होती है इसके विपरीत पदार्थ में विरोधी विशेषताए होते हुए भी विद्यमान रहती है। पदार्थ की इन शक्तियों को ग्रहण करना ही अनेकांतवाद कहलाता है। पदार्थ का, जीव संबंधी तत्व ज्ञान के प्रति विचार भिन्न–भिन्न विद्वानों ने व्यक्त किया है जिसका वर्णन आगामी अंकों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जावेगा।

महावीर के अनुसार तत्व ज्ञान व ज्ञानात्पद को भावना में अभिव्यक्त करने को स्यादवाद के रूप में प्रस्तुत किया है तथा महावीर के अहिंसा का प्रतिबिम्ब ही स्यादवाद है। महावीर का सत्य प्रायोगिक रूप से सत्य ही है अर्थात् महावीर की कथनी व करनी में भेद नहीं है। कोई भी मनुष्य उनके कथन को झुठला नहीं सकता उसके सत्य के प्रति कोई विरोध भी नहीं कर सकता।

25. श्री सीमन्धर स्वामी

श्री सीमन्धर स्वामी की जीवनी को जानने के पूर्व सीमंधर स्वामी कौन हैं? कहाँ बिराजते है ?

श्री सीमन्धर स्वामी महाविदेन क्षेत्र के पहले देव है, इनको समझने के पहले महाविदेह क्षेत्र को जानना आवश्यक है।

महाविदेह क्षेत्र :

जैन शास्त्रों के अनुसार : समय काल चक्र को दो भागों में विभक्त किया जाता है।

1) अवषर्णिक काल 2) अवर्षियकाल

प्रत्येक काल में 6 आरे होते है। अर्थात् काल में छः आरे होते हे। अर्थात् 12 आरे होते हे। प्रत्येक आरा लगभग औसतन 21000 वर्ष का होता है। वर्तमान पृथ्वी का भू–भाग जिसमें हम रहते है। वो भारतक्षेत्र कहलाता है। इसके कितने ही मीलों की दूरी पर एक और एक पृथ्वी है, जो पां. भागों में विभाजित है जिसमें 32 देश विद्यमान है इसको महाविदेह क्षेत्र कहते है।

ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक अवसणिय की में (उसमें) 24 तीर्थंकर व 20 विमान बिराजमान है व रहेंगे।

इसी आधार पर भरत क्षेत्र में 24 तीर्थंकर हुए है। जिसमें भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर रहे है जिसका समुद्र लगभग 2600 वर्ष हो गए है जिन्होंने सभी कर्मों का सम करके मोक्ष को प्रापत कर लिया है।

दो निरांकार निरंजन है हम उनके गुणों के आधार पर उनकी प्रतिष्ठित प्रतिमाएं को पूजते है अर्थात् उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया है। दूसरा पद सिद्ध का है, सिद्ध वो है जिन्होंने सब कुछ प्राप्त कर लिया है, उनके जैसे ही हमें भी सब कुछ प्राप्त करना है। ये वे देव है जिन्होंने सब कुछ प्राप्त कर लिया है, उनके दर्शन पूजा रकने से हमको सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

सीमंधर स्वामी का जीवन चरित्र

संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :

1) सीमंधर स्वामी भगवान : भगवान सीमंधर स्वामी कौन है ?

वर्तमान तीर्थंकर भगवान है। भगवान सीमंधर स्वामी जो हमारी जैसी ही दूसर पृथ्वी पर विराजमान है। उनकी पूजा का महत्व यह है कि उनकी पूजा करने से, उनके सामने झुकने से वे हमें शाश्वत सुख का मार्ग दिखायेंगे और शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग दिखायेंगे।

2) सीमन्धर स्वामी कहाँ पर है ? : महाविदेह क्षेत्र में 32 देश है जिसमें से भगवान श्री सीमंधर स्वामी पुष्प कलावती देश की राजधानी पुंडरिकगिरि में है। महाविदेह क्षेत्र हमारे पृथ्वी के उत्तर पूर्व दिशा से लाखों मील की दूरी पर है।

3) सीमन्धर स्वामी का अधिक परिचय : भगवान सीमंधर स्वामी का जन्म हमारी पृथ्वी के सत्रहवें तीर्थंकर श्री कुन्थुनाथ और अठारहवें तीर्थंकर श्री अरहनाथ स्वामी के जीवनकाल के बीच में हुआ था। भगवान श्री सीमंधर स्वामी के पिता श्री श्रेयांस पुंडरिकगिरि के राजा था थे। उनकी माता का नाम सात्यकी था।

अत्यंत शुभ घड़ी में माता सात्यकी ने एक सुन्दर और भव्य सप वाले पुत्र को जन्म दिया। जन्म से हीबालक में मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान व अवधिज्ञान थे।

उनका शरीर लगभग 3000 फुट ऊँचा था। राजकुमारी रूकमणी को उनकी पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब भगवान राम के पिता राजा दशरथ का राज्य हमारी पृथ्वी पर था उस समय महाविदेह क्षेत्र में भगवान सीमंधर स्वामी ने दीक्षा अंगीकार करके संसार का त्याग किया था।

यह वहीं समय था जब हमारी पृथ्वी पर बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिव्रत स्वामी

और इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ की उपस्थिति के बीच का समय था। दीक्षा के समय उन्हें चौथा ज्ञान उदय हुआ। जिसे मनः पयार्य ज्ञान कहते हैं। एक हजार वर्ष तक के साधु जीवन, जिसके दौरान उनकी सभी ज्ञानावरणीय कर्मों का नाश हुआ उनके बाद भगवान को केवल ज्ञान हुआ।

भगवान के जगत कल्याण के इस कार्य में सहायता के लिए उनके साथ 184 गणधर, 10 लाख केवली 900 करोड़ साधु, 10 करोड़ साध्वियों 900 करोड़ पुरूष और 900 करोड़ विवाहित स्त्री पुरूष (श्रावक श्राविकाएँ) है। उनके रक्षक देव देवी और चन्द्रायण यस देव और पाँचा गुली यक्षिणी देवी है।

महाविदेह क्षेत्र में भगवान सीमंधर स्वामी और अन्य उन्नीस तीर्थंकर अपने 1 करोड़ 80 लाख और 400 हजार साल का जीवन पूर्ण करने के बाद मोक्ष प्राप्ति करेंगे।

स्वामी सीमंधर स्वामी मेरे लिए किस प्रकार हितकारी होते हैं

तीर्थंकर का अर्थ है पूर्ण चन्द्र जिन्हें आत्मा का सम्पर्ण ज्ञान हो चुका है – केवल ज्ञान में हाजिर है। हमारी इस (भरत क्षेत्र) पर पिछले 2400 साल से तीर्थंकरों का जन्म होना बाद हो चुका है। वर्तमान काल के सभी तीर्थंकरों में से सीमंधर स्वामी भगवान हमारी पृथ्वी के सबसे नजदीक है और उनका भरत क्षेत्र जीवों के साथ श्रणानुबंध है।

सीमंधर स्वामी की उम्र अभी 1,75,000 साल है वे अगले 1,25,000 सालों तक जीवित रहेंगे। अतः उनके प्रति और समर्पण है हमारा अगला जन्म महाविदेह क्षेत्र में हो सकता है और भगवान सीमंधर स्वामी के दर्शन प्राप्त करके अन्यतिंक मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं।

मंदिर के मध्य में श्री सीमंधर स्वामी भगवान की विराट प्रतिमा है जिसे इस पैनरैम के द्वारा देख सकते है, श्री सीमंधर स्वामी भगवान का भरत क्षेत्र के साथ ऋणानुबंध होने की वजह से उनके प्रति जो अनन्य भक्ति है वह हमें मोक्ष में जाने के लिए मदद करेगा तो फिर चलिए सीमंधर स्वामी का दर्शन करें और उनके आर्शीवाद प्राप्त करें।